ड़ी भिन्न

ास्य-व्यंग्य)

रेन्द्र शर्मा पुस्तक-संग्रह

लेखक

ाल सुरारवाला

एम० ए०, डिप० ऐल० ऐस-सी०

प्रकाशक

काशन मंदिर

अलीगढ़

व्यंग्य-चित्रण : श्री गोपाल 'मधुकर', कलाविभागाध्यक्ष,
बारहसैनी कालेज, अलीगढ़।

मूल्य : चार रुपये (४·००)

प्रथम संस्करण : जनवरी, १९६४

प्रकाशक : भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़।

मुद्रक : आदर्श प्रेस, अलीगढ़।

कार्य-क्षम एवं कर्त्तव्यनिष्ठ यार-चचा*

ओ३म्प्रकाश वार्ष्णेय, एम० ए०

को

सादर भेंट

जो मेरी जिन्दगी में तूफान आने पर

किनारे बैठ नहीं रहते

' प्रकार के होते हैं—

कई चचा—जो भतीजे से बहुत पहले जन्म लेते हैं यानी और बेटे में अधिक अन्तर नहीं होता।

'र चचा—जो भतीजे से एकाध दो ढाई साल इधर या उधर नी चचा भतीजे में जब भाँग, सिनेमा, सिगरेट और मजाक के छनती है। और

ाम चचा—जो भतीजे के बहुत बाद जन्म लेते हैं यानी जो जे मालुम हैं और भतीजे के जूतों पर पालिस करने में गौरव

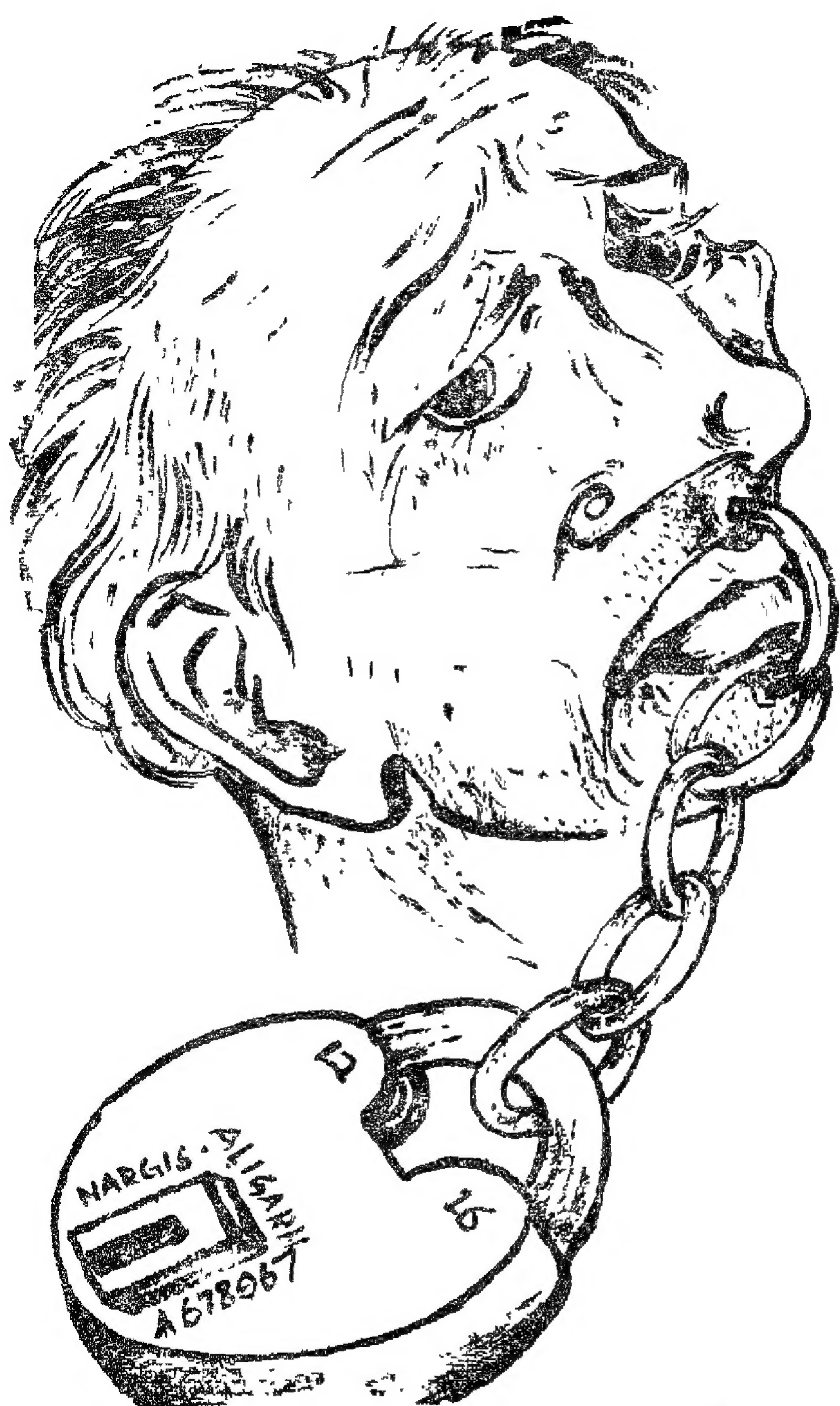
इस पुस्तक के प्रणयन में जिन मित्रों से सहायता मिली है, उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

उन अग्रज-स्वरूप दिग्गजों का आभारी हूँ, जिन्होंने मेरे व्यंग्य को सहन कर मेरी विनोदी-वृत्ति की सराहना की और इस प्रकार मेरा उत्साह-वर्द्धन किया।

जिन कृपानिधानों का मेरे प्रति आरम्भ से ही स्नेह रहा है, जो इस ओर मेरा उत्कर्ष देखने के अभिलाषी रहे हैं, इस संग्रह के साथ मैं उनके आशीर्वाद का आकांक्षी हूँ।

—रोशनलाल सुरीरवाला





यह मुँह आपका ही है

हमारा दावा है कि यह मुंह, जो ओठों के ऊपर और नाक के नीचे, कभी अस्पष्ट कभी स्पष्ट छिद्र के रूप में स्थापित है, आपका ही है। आप इसे अपनी पत्नी और पड़ोसी के रेडियो की भाँति इच्छानुसार प्रयोग कर सकते हैं। बहुमुखी, चतुर्मुखी एवं अन्तर्मुखी शब्द नये वकील या प्रवक्ता की भाँति निरन्तर चीख रहे हैं कि शरीर चाहे आपके बाप का हो, इस मुख के आप ही मालिक हैं। 'अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना' से प्रमाणित है कि युगों युगों से यह मुख आपका ही रहता आया है। हो सकता है कि बुढ़ापे में दाँत पराये हो जायें किन्तु यह मुँह शतप्रतिशत आपका ही रहेगा।

वास्तविक बात यह है कि कुछ लोग उँगली चाटने, दाँत दिखाने, गाल बजाने, कुल्ला करने, कराहने, जँभाई लेने एवं जीभ दिखाने या चलाने में ही मुँह का प्रयोग समझते हैं किन्तु हँसते समय वह किराये का हो जाता है। संभवतः यही कारण है कि

टूट-फूट के भय से हँस कर प्रयोग करने से कतराते हैं। हमारा अभिमत है कि हँसते समय ही मुँह एक सौ एक नये पैसे (सवा सोलह आने) अपना होता है। यदि आदमी हँसता नहीं है तो उसके और जानवर के मुँह में क्या अन्तर है? जिस प्रकार छींक से नाक के अस्तित्व का बोध होता है उसी प्रकार हँसी से मुह का पता चलता है।

एक बार मित्र-मण्डली में एक विद्वान चूड़ीदार पाजामा और शेरवानी पहने जँच रहे थे। सहसा हमें पाजामे के एक बटन में से कोई चीज झाँकती दिखाई दी। हमने हर दृष्टिकोण से निश्चित हो उस चीज को पकड़ा और खींचते हुये पूछ ताछ की, "शायद आप नारा बाँध नहीं पाये।"

सभी ने ठहाका मारा किन्तु पी० एच० डी० महोदय मुह की पालथी लगाये बैठे रहे। हमसे नहीं रहा गया, "श्रीमान् वह तरकीब हमें भी बताइये।"

"क्या"

"बिना मुंह खोले रोटी खाने की।"

पी० एच० डी० महोदय बिगड़ उठे, "क्या अशिष्टता है? हँसलो, यह विदित नहीं है कि सब कुछ मिथ्या है।"

"लेकिन हमारा विश्वास है कि आपकी विद्वत्ता मिथ्या नहीं है। यदि यह भी मानलिया जाय तो कम से कम अन्डर-बीयर का नारा मिथ्या नहीं है" हम पुनः ठहाका लगा उठे।

दार्शनिक महोदय दाँत भींच कर चीखे, "देह के साथ तुम्हारी अक्ल भी मोटी है।"

हमें उन्हें चिढ़ाने में आनन्द आरहा था। अतः हमने उन्हें और भी ताव पर रखा, "किन्तु आप इसे हमारी भाभी (विद्वान महोदय की पत्नी) के सामने नहीं कह सकते। वर्ना आपके ऊपर अचानक गिर कर चटनी बना देंगी। फिर भी मोटी देह का सटीक कारण है अधिकांश पत्नियाँ अपने अपने पति

से बारीक अक्ल के मुकाबले मोटी देह की अधिक अपेक्षा रखती हैं।"

मित्र मण्डली फिर से चना सी खिल पड़ी और दार्शनिक महोदय क्रोध पूर्वक ओठों से स्टेट बैंक के सेफ का ताला डाले खिसक दिये :

इन बुद्धि-बली महाशय पर तरस खाकर हम सिद्ध कर सकते हैं कि संसार के सभी विद्वान और महापुरुष मुंह का खूब स्तैमाल करते हैं। वे समझते हैं कि बिना घास गधा और बिना हास आदमी निष्प्राण रहता है अतः भयंकर ठट्टे मारते हैं। कैसे वज्रमूर्ख हैं वे लोग जो हास्य की वैज्ञानिक उपादेयता को नहीं समझते और कहते हैं कि हँसने में अक्ल मुंह की राह बाहर निकल जाती है। प्रथम तो यह मान्यता ही गलत है। हमने दिल्ली की विश्व-उद्योग-प्रदर्शनी में स्वयं देखा है कि हर देश के मंडप में आने का मार्ग और है तो जाने का मार्ग और है। यदि मुंह से अक्ल बाहर जाती है तो प्रवेश किधर से करती है ? पुराने मकान की तरह यदि शरीर की बनावट दोषपूर्ण मान भी ली जाये तो भी अधरों की चहारदीवारी पर दाँतों के नुकीले शीशे जड़े हुये हैं। अतएव कुलीन वधू की भाँति अक्ल बाहर जाने का साहस नहीं कर सकती। जब बुढ़ापे में दाँत उखड़ जाते हैं तभी आदमी सठियाता है, अतः जब तक मुंह में दाँत हैं, निर्भय होकर हँसना चाहिये।

कुछ ऐसे होते हैं कि सुसराल भी जायेंगे तो इस प्रकार कि कब्रिस्तान की ओर लेजाये जारहे हैं। चंचल साली और मदरिम सलहजें रसभरी घटाओंसी घिररही हैं मगर आप हैं कि दुहरी बखिया किये ओठों की छतरी लगाये पार्क की पटिया से मुर्दा पड़े हैं। ईश्वर ही जाने ऐसे लोगों की सन्तान का मुँह होगा भी या नहीं। यदि हुआ भी तो इतना सिद्ध है कि इनसे छोटा होगा और यदि दस पाँच पीढ़ी ऐसी ही 'हँसो मत' योजना

चली तो सम्भव है हमारी शंका सही बैठे और औलाद बिना मुँह की होने लगे [जिस मनुष्य के प्रयोग न करने से दुम ही नहीं रही तो मुँह ही क्या खाकर रहेगा]। जो भी हो, इतना तय है कि औलाद हँसना भूल जायेगी और जब-जब हँसने का अवसर आया करेगा, वह जन्म से ही अभ्यास होने के कारण रो दिया करेगी।

आदमी की एक किस्म वह होती है जो मुस्लिम महिलाओं के बटुओं की तरह मुँह का प्रयोग करती है मानो सुपाड़ी के एक दो दाने निकालने को जरा सा दोनों और खींचा और बन्द कर दिया। ऐसे लोग हँसना चाहकर भी हँसना नहीं जानते। हँसते समय मुँह में हवा भर जाती है, कपोल और नासिका-रन्ध्र फूलने और पटकने लगते हैं, ओंठ बार बार ऊपर नीचे होते रहते हैं, दांतों की मिलन-पंक्ति चमक चमक जाती है। लगता है कि बिना दाना पानी लिये टूटे इक्के का मरियल घोड़ा हाँफ रहा है।

हँसने का अभ्यास प्रारम्भ से ही आरम्भ करना चाहिये वर्ना मुँह सिकुड़कर जाम हो जाता है, और तब एक सीमा तक ही मुँह का व्यास बढ़ाया जा सकता है। ऐसी दशा में कभी हंसे भी तो ऐसा लगेगा कि पंक्चर से हवा निकल रही है।

बिना हँसने वाले लोग मानुस नहीं मनहूस हुआ करते है। ये गेहूँ के बराबर भी नहीं मुस्करा पाते किन्तु मनहूसी को भुसी की भाँति लपेटे रहते हैं। जहाँ जायेंगे मनहूसियत आगे-आगे चलेगी। ये पिकनिक को शवयात्रा में तथा स्वागत-समारोह को शोक-सभा में बदल देते हैं। किसी को विदा करते समय, किसी बीमार को देखते समय या मातमपुरसी के समय ऐसे लोगों को ही सबसे आगे रखना चाहिये। शोक-वृत्त के ये लोग केन्द्र-बिन्दु होते हैं।

पूर्व परिचित डा० (पी० एच० डी०) एक बार अपनी किसी रिश्तेदारी में मातमपुरसी को गये तो मातमपुरसी को

आने वाले अन्य लोग डा० साहब से ही सहानुभूति प्रकट करने लग जाते। तब उनका रिश्तेदार गम में भी मुस्कराये बिना न रहता।

इसी प्रकार एक बार डा० साहब को वेतन-इन्क्रीमेन्ट मिले। खुशी खुशी घर आये तो पता लगा लड़का हुआ है। हर्ष पुलकित हो थोड़ी हँसी आई तो श्रीमुख को निहार साली साहिबा पूछ बैठी, "जीजाजी, शादी से पूर्व जब पिता जी आपको देखने आये थे तब आपसे एक प्रश्न किया था कि चिरंजीव ! क्या पेट में दर्द रहता है। शादी पर भी पलकाचारे के बीच मैंने आपसे यही प्रश्न किया था और आज फिर दुहरा रही हूँ। सच-सच बताइये, क्या वास्तव में आपके पेट में सूखे ऐंठों का या वायुगोले का दर्द उमड़ता रहता है ?"

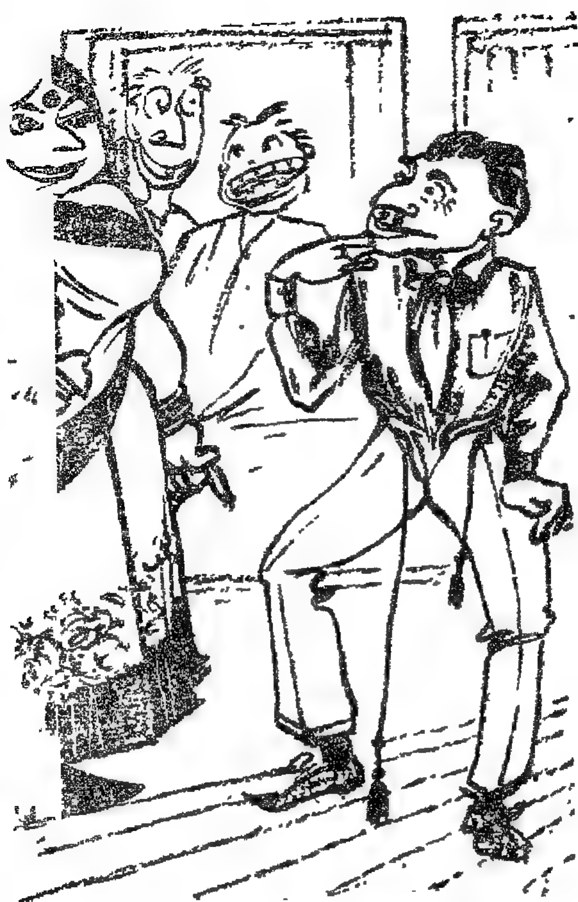
साली साहिबा डा० साहिब की ओर एक टक देख रही थी। डा० साहब ने प्रश्न का उत्तर न देकर थोड़ा और हँसने की चेष्टा की तो साली साहिबा की कलमी आँखों से समबेदना के दो आँसू ढुलक पड़े।

अन्त में, हम उच्चस्तरीय शरीफ, सुसंस्कृत महानुभावों को विश्वस्त सूत्रों के आधार पर पुनः सूचित करते हैं कि आपका जो मुँह है वह आपका ही है। यदि शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य चाहते हैं तो इस मुँह से खूब हँसिये, निरन्तर हँसते रहिये, और ध्यान रहे कि हँसने का अभ्यास न छूट जाये। यदि आप हँसने से अपरिचित हैं तो हमारे डा० साहब की तरह जब भी बाजार बंगलोरी साड़ी खरीदने जायेंगे तो बैठते ही दुकानदार आपसे हाथ जोड़कर क्षमा मांगलेगा, "श्रीमान् जी, कफन इस दुकान पर नहीं मिलते।"

[बारहसैनी कालेज, अलीगढ़] —रोशनलाल सुरीरवाला

३१ जनवरी १९६४

फूल और शूल



र पेन्ट का नारा खुलकर..........

ाी श्री दशरथनन्दन, बी० ए०

न तक लम्बे बालों वाली एक अत्यधिक
ट रिक्त न होने के कारण खड़े-खड़े ही चलने
तो टेसू की खपन्च जैसे हाथ पैरों वाले, सवा
ऊँची नाक, बड़ी आँख, पतले ओठ, श्मश्रु हीन
ावाज के एकमात्र स्वामी बाबू दशरथनन्दन जी

ने अपने झुके हुए कंधे उचकाकर कहा, "इन एजूकेटेड फैशनेबुल बालाओं से हमें भी भिड़ जाना चाहिये। इस बराबरी के युग में उदारता की तनिक भी आवश्यकता नहीं। आखिर ये भी तो हम पुरुषों के कंधे से कंधा भिड़ाकर चलती हैं। युवकों को बेकारी का जहन्नुम भी इन्हीं के कारण नसीब होता है। डाक्टर, प्रोफेसर, क्लर्क, टाइपिस्ट, सेल्स, जहाँ देखो वहाँ लड़कियाँ।"

"किन्तु जनाब" दशरथनन्दन जी से अपरिचित एक छोटे से कालेज के फिजिकल इन्स्ट्रक्टर बोले, "इन आधुनिकाओं से भिड़ने के लिए भी तो थोड़े दम की अपेक्षा है। और आप तो शायद गर्दन तोड़ बुखार में तपे नच्छर को चित्त भी नहीं कर सकते। कभी उगते सूरज के दर्शन भी किये हैं?"

दशरथनन्दन जी ने घिसी हुई रेशमी टाई को ठीक करते हुए पहली बात को कड़वी दवा के समान गटका और दूसरी बात का उत्तर दिया, "उगते हुए सूरज के दर्शन की क्या जरूरत है? आप आजकल के चलन से जानकार नहीं जान पड़ते। सूरज कोई अपना बॉस है या कोई मिनिस्टर? उससे भला अपना क्या मतलब निकलता है?"

फिजिकल इन्स्ट्रक्टर थोड़ा हँसे, "तो हवा खाने में विश्वास नहीं रखते आप? पुरानी और बेपैसे की टानिक जो ठहरी।"

"ठीक कहते हैं आप। यहाँ तो बिड़ला मन्दिर भी कोई न जाये अगर वहाँ चाट न बिकती हो। रही हवा की बात सो मैंने शायद अभी-अभी ठीक ही कहा था कि आप आजकल के चलन से जानकार नहीं जान पड़ते। फैशन ये है कि दरवाजे और खिड़कियों पर पहले पर्दे पड़ने चाहिये और फिर चिकें ताकि देशी पवन बिजली की विदेशिन एअर से गुस्ताखी न कर बैठे।"

इसी समय एक महिला को स्थान देकर एक युवक खड़ा हो गया। दशरथनन्दन जी ने दुहराया, "यही तो युवक की कमजोरी है। जब कोई महिला खड़े युवक को स्थान नहीं दे सकती तो हमें भी महिलाओं को सिर नहीं चढ़ाना चाहिये।"

इसी क्षण बस रुकी और एक भारी भरकम महिला ने चढ़ने का उपक्रम किया। उसने दशरथनन्दन की ओर देखा।

सहसा बाबू दशरथनन्दन की धोंकनी तेज होगई, "मैं कहता हूँ किसी भी देश की उन्नति वहाँ के नारी-सम्मान पर निर्भर है। 'यत्र-पूज्यन्ते नारी रमन्ते तत्र देवता' जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं। हमें भूलना नहीं चाहिये कि हमारे महान देश भारत की सांस्कृतिक आधार-शिला सीता, सावित्री और अनुसूइया जैसी महिला-रत्नों पर ही टिकी हुई है। आह! आज का युवक नारी का समुचित आदर नहीं करता बल्कि निन्दा में लगा रहता है। हमें स्मरण रखना चाहिये कि:—

नारी निन्दा मत करो, नारी नर की खान।
नारी से नर होत हैं ध्रुव प्रह्लाद समान॥"

सभी श्रोता चकित हो गये कि अचानक रिकार्ड का स्वर कैसे बदल गया पर समझ में किसी के भी न आया।

उस भारी भरकम महिला ने अन्दर प्रवेश किया और आज्ञाकारी पुत्र की भांति दशरथनन्दन जी ने उछल कर अपनी सीट खाली की और उस स्थान पर वह महिला सोख्ते पर स्याही के समान धीरे-धीरे फैल गई।

ये धीरे-धीरे फैलने वाली महिला बाबू दशरथनन्दन की बस-पथ-गामिनी जीवन-सहचरी थीं।

असल में बाबू दशरथनन्दन मूर्ख तो नहीं थे पर मूर्खता के दौरे चौबीसों घन्टों आते थे। इतवार के अतिरिक्त वे सभी दिन दफ्तर के काम से दबे-से, किसी अप्रकट कारण से खोये-से, लिफाफे की तरह अक्ल से रीते-से स्वयं को अनुभव करते थे। श्रीमती जी की कृपा से इतवार को भी यही बेढब दशा हो जाती थी। अभी-अभी जो उनके मुखारविन्द से चतुरों की सी वार्तारज फूट रही थी उसका कारण था कि आज इतवार था और श्रीमती जी पास में छप्पर सी छाई हुई नहीं थीं। अब उनकी श्रीमती जी प्रकट

हो चुकी थीं अतएव हमने अनुमान लगा लिया कि दशरथनन्दन जी की अक्ल ने, धोबी से सावधानी की तरह विदा लेली है और अब वे भोले बालम और काठ के उल्लू के रूप में दिखाई देंगे।

× × × ×

"देखिये आपकी पेन्ट का नारा खुल कर गिर पड़ा है" सहसा एक बैठे व्यक्ति ने खड़े होकर चलने वाले बाबू दशरथनन्दन जी से कहा। सभी ने देखा कि पेन्ट सरक कर पायजेब की तरह एड़ियों से आ लगा है।

"बटन न होने के कारण बांध आया था" बिना श्रीमती के प्रश्न किये बाबू दशरथनन्दन जी ने उत्तर दे दिया। किन्तु अब श्रीमती बिफर गईं। नाक के नथुने मणिपुरी नृत्य में लँहगा की तरह फूल गए. "तो तुमने मेरे पेटीकोट से नारा निकाला था ! तुम्हारी हिम्मत कैसे पड़ी ?"

"बड़ी आसानी से" बाबू दशरथनन्दन ने चुटकी बजाई, "आप उस समय पहिने हुए नहीं थीं।"

कहा जा सकता है कि ऐसी पत्नी से दशरथनन्दन जी ने शादी क्यों की ? पर भाई दशरथनन्दन जी ने किसी पत्नी से शादी नहीं की। शादी से पहले उनकी पत्नी भी एक लड़की ही थी। हाँ आश्चर्य की बात ये अवश्य है कि स्वयं देखकर भी दशरथनन्दन जी ने अपनी सींक सी गर्दन में ये काला मनौटा क्यों लटकाया ?

शुरू से बात यों है—दशरथनन्दन जी ने इन्टर में तीन साल लोट लगाई थी और दो साल फेल होकर तीसरी साल सप्लीमेंटरी से बी० ए० फाइनल की गली पार कर सके थे। आधुनिक विचारों के कारण सजधजकर स्वयं ही कन्या-दर्शनार्थ चल पड़े। जब कन्या सामने आगई तो आपने फर्माया, "हम कन्या को आजकल की रूप-सज्जा से युक्त खुली-पुस्तक के रूप में देखना चाहते हैं। ये तो

मुम्बई के वेंकटेश्वर प्रेस में कठोर पट्ठे पर छपा मोटे अक्षरों का विपुलकाय अशुद्धि-रत्न है।"

इस पर कन्या-जनक ने मिठियाते हुए कहा, "अजी आप समझे ही नहीं कि ये कौन हैं।"

"अजी हम सब समझ गए" दशरथनन्दन जी ने उत्तर दिया, "अशोक-वाटिका में जो विदेह-नन्दिनी को डराने वाली आल-सोलोन-वीमन्स-रैम्टलर-चैम्पियन थी, उसी ने आपके यहाँ अवतार ले लिया है और अब मुझ दशरथनन्दन की बीबी बन टी० बी० करना चाहती है।"

कन्या ने भूचाल राग में रोना आरम्भ कर दिया। कन्या-जनक ने उसे ढाढ़स दिया और दशरथनन्दन को समझाया, "आप दो साल से सड़क की धूल फाँक रहे है। हो सकता है बुढ़ापे तक यही क्रम चले हम आपको कचहरी में क्लर्क करा देंगे। घडी, साइकिल, सोफासेट, रेडियो, सूट के साथ पाँच हजार नकद देंगे। आप ये भी जानते हैं कि अकेली यही मेरी लाड़ली संतान है अतएव ये मकान भी आपका है। जिन्दगी भर आराम करो। 'लड़के के हाथ पर' की रस्म के एक हजार अभी देता हूँ।"

"तब तो इस हिडिम्बा से शादी मंजूर है" दशरथनन्दन जी के मुख से निकल पड़ा। कन्या की हँसी भैरव राग और त्रिताल के असंभव संयोग में फूट पड़ी।

भांवरों के समय जब श्याम महिषी के आगे गो-वत्स से दशरथनन्दन चल रहे थे तो गिरते गिरते बचे। चाचा ने संभालकर पूछा, तो बोले. "चाचा, कुछ घबड़ा गया हूँ।"

"सच कह रहे हो, बेटा! मैं बहू को देखकर अन्दाज लगा रहा हूँ" चाचा ने सहानुभूति के स्वर में कहा।

विदा के समय जब सास ने रोते-रोते दशरथनन्दन से अनुनय-विनय की कि इसे कोई तकलीफ न होने देना, मेरे एक ही लड़की है, तब तक भी दशरथनन्दन की घबड़ाहट समाप्त या कम न

हुई थी, सकपकाते से बोले, "चिन्ता न करो अम्मा जी, मैं अपनी माँ के समान ही आपकी लड़की के सुख-दुख का ख्याल रखूँगा।"

यों शिक्षा के नाम पर श्रीमती जी रिवर कावेरी को झरबेरी के किस्म का कोई पेड़ ही समझती थीं किन्तु श्रीमती के भयंकर रूप और पहलवान टाइप आचरण [एक बार एक दूकानदार ने काँच के गिलास को बहुत पुख्ता बताया था, उसे श्रीमती जी ने देखते-देखते हाथ में ही खच से अनेक टूक कर डाला था। दूसरी बार जिस कुत्ते ने बाबू दशरथनन्दन की टाँग भरली थी, उसमें श्रीमती जी ने वह लात जमाई कि बेचारे के मुँह से रक्त विन्दु झिलमिला आये थे और कई घण्टे तक क्लासिकल गाता रहा था] से बिल्ली से चूहे के समान दशरथनन्दन जी भयाक्रांत हो गये और ये घिग्घी पाँच छः वर्ष तक रही। बिना श्रीमती जी की आज्ञा लिये चौखट से बाहर पैर नहीं रख सकते थे और बिना सूचना दिये शौच-त्याग भी अपराध-सा लगता था। एक बार दरवाजे पर बच्ची को खिला रहे थे कि किसी अपरिचित ने पूछा, "क्या आप ही की बच्ची है, बड़ी तगड़ी है।"

जरा दूर पर गेहूँ बीनती श्रीमती जी ने मुस्कराकर आँखें दिखादीं। दशरथनन्दन जी ने घबड़ाकर कोई जवाब न दिया। पूछने वाले के चले जाने पर श्रीमती जी से पास आकर कहा, "आँखें क्यों दिखायी थीं। मैं बिना तुमसे पूछे थोड़े ही उत्तर दे देता।"

पति का इस सीमा तक पालतू होना श्रीमती जी को फालतू लगा और दशरथनन्दन जी का भय दूर करने के लिए अनेक प्रकार से लिफ्ट देने लगीं। इसका आशातीत परिणाम निकला और दशरथनन्दन जी का भय किसी सीमा तक दूर भी होगया किन्तु फिर भी दफ्तर में बॉस के सम्मुख भय किसी न किसी रूप में प्रकट हो ही जाता। एक बार एक लैटर पर दस्तखत कराने थे। लैटर बॉस के सम्मुख रखा और नम्रतापूर्वक निवेदन किया, 'सर के नीचे फेथफुल्ली कर दीजिये

बॉस ने कलम उठाया। मगर उनके मुख से अचानक निकला, "क्या कहा ?"

"जी दस्तखत के नीचे फेथफुल्ली कर दीजिये।"

"जरा फिर से कहना।"

इस बार दशरथनन्दन घबड़ा गए। लैटर उठाते हुए बोले, "सर, मैं अभी ठीक करके लाया।"

साथियों को देख दशरथनन्दन जी को भी एम० ए० करने की सूझी। हिम्मत एकत्र कर श्रीमती जी से प्रार्थना की, "अगर कुछ रुपये खर्च करो तो एम० ए० कर लूँ।"

"क्या कुछ अक्ल बढ़ेगी ?"

"और क्या बेकार फीस भरूँगा।"

"तो करलो", श्रीमती जी की आज्ञा पा दशरथनन्दनजी ने सुबह कालेज ज्वाइन कर लिया। परीक्षा दी। परिणाम निकला, तो उनके अतीत के अनुकूल रौल नम्बर छात्रों से विनयशीलता के समान नदारद था। घर गए। श्रीमती जी ने पूछा तो डर के मारे बर्स्ट हो गए, "पास हो गया।"

'तब तो सात दिन का बर्त और सत्यनारायण की कथा कहलाऊँगी" श्रीमती जी खुशी से हिल उठीं।

"बर्त-फर्त मत रखना और न कथा ही कहलाना। मैं बर्त और कथा लायक पास नहीं हुआ हूँ।"

दशरथनन्दन जी ने ये बात अपने घनिष्ठों को खूब नमक मिर्च लगाकर सुनाई और उन्हें विश्वास दिलाया कि अगर वे अपनी श्रीमती जी को इस तरह चरका न पिलाते तो वे उनका भुर्ता बनाकर खा जातीं।

धीरे धीरे सभी ने अनुमान लगा लिया कि दशरथनन्दन जी पत्नी-भर्ता न होकर पत्नी-भुर्ता हैं जिनके खाये जाने का हर घड़ी भय बना रहता है। उस दिन यह अनुमान विश्वास में बदल गया जब किसी ने दशर जी से पूछा, "अगर दुनियाँ

के सभी पत्नीभक्त एक ओर खड़े हों तो क्या तुम उनमें शामिल नहीं होओगे।"

"नहीं" दशरथनन्दन जी ने दृढ़ता से कहा, "क्योंकि मुझसे मेरी श्रीमती जी ने कह रखा है कि इन दुनियाँ वालों से दूर ही रहा करो"।

इस विश्वास के सीमेण्टेड होने के बारे में एक घटना और कही जाती है। सच या झूट ये तो राम जाने। हो सकता है कहीं से पढ़कर गढ़ दी हो। कहते यों हैं कि एक बार पत्नी-भीत-पति-परिषद के सभापति का चुनाव सम्पन्न होना था। गोष्ठी जुड़ी ही थी कि श्रीमतियों का चन्डीदल बेलन चीमटा लेकर मुस्कराते आ पहुँचा। गोष्ठी के सभी सदस्य भाग छूटे। केवल दशरथनन्दन ही डटे रहे। चण्डी दल की सदस्याओं के चले जाने पर सभी ने एक स्वर से दशरथनन्दन जी को सभापति चुनने के लिये पुकारा किन्तु दशरथनन्दन जी को जब हिलाया गया तो पता लगा कि वे तो बेहोश पड़े हैं। न भागने का कारण समझ में आगया।

किन्तु एक दिन उनके विश्वास की शिला सरकती सी जान पड़ी। जब रौब में भरे दशरथनन्दन जी ने उन्हें सुनाया, "आज मैंने जीवन भर का बदला ले लिया। हमेशा वाक् संघर्ष में अन्तिम शब्द उन्हीं के हुआ करते थे। डरा धमकाकर हमेशा मेरा और अपना मतभेद मिटा देती थीं। किन्तु आज श्रीमती जी को वह वह सुनाई कि जन्म भर याद रखेंगी"

"अच्छा फिर क्या हुआ" दोस्तों ने चंचल जिज्ञासा प्रकट की।

"हुआ क्या, जब मैंने खूब सुनाली तो बेचारी घुटनों के बल मेरे पास आई।"

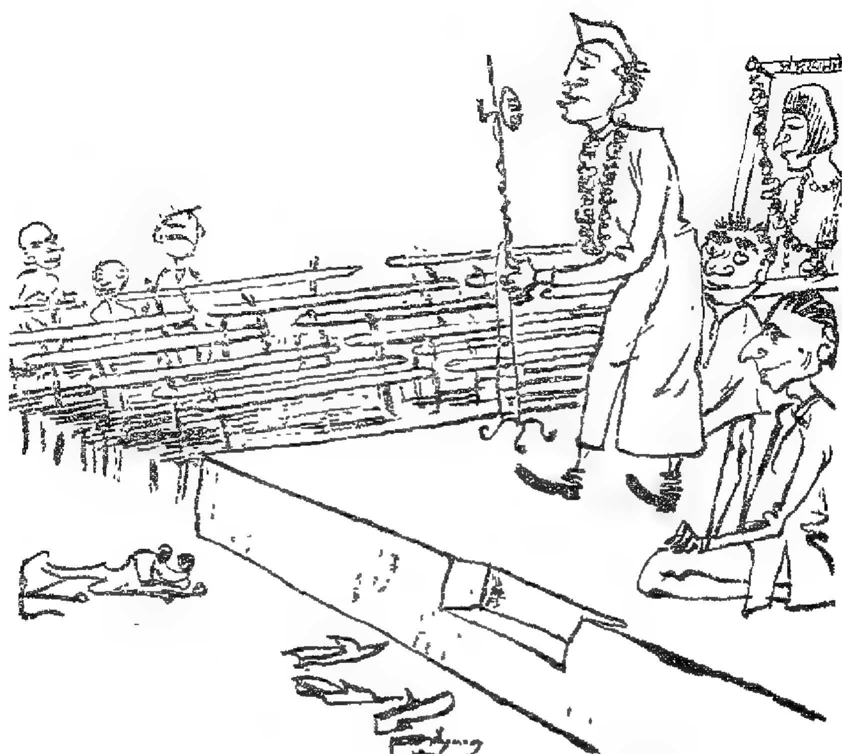
अच्छा, क्या कहा फिर ?

"यही कि निकलो खाट के नीचे से, दुबके क्यों बैठे हो ?"

× × × ×

कुछ भी हो दशरथनन्दन जी के प्रगाढ़ मित्रों का कथन है कि दशरथनन्दन जी की ये दशा केवल उनकी होल लाइफ की इस ग्रेटेस्ट अनराइवल्ड ट्रेजेडी के कारण है कि उनकी माँ का नाम सीता और पत्नी का नाम कौशल्या है जिसके परिणामस्वरूप वे न तो कभी स्वयं को सपूत ही अनुभव कर सके और न समर्थ पति सिद्ध करने के प्रयास को ही सोच सके।

—०—



"अनेक बार तुलसीदास कृत वाल्मीकि-रामायण को राधेश्याम की तर्ज में सुना है"

तुलसीदास घर पर नहीं मिले

मित्र ने अचानक हमारे बाँये कन्धे पर दाहिना हाथ मारा और चीखा, "बता यह क्या है ?"

अवयव-संबंधी हमारे सम्पूर्ण ज्ञान को यह गंभीर चुनौती थी। प्रश्न दो के पहाड़े सा सरल था। अतः हमने संतोष की साँस लेकर झट से कह दिया, "कंधा है"

"यार, हो चोंच ही। तुम्हारे इस टूटे से कंधे से क्या मैं परिचित नहीं हूँ यह देखो मेरे बायें हाथ मे क्या लगा है ?

हमने जो निगाह उठाई तो आकार, प्रकार, रंग और छापे से ही पहचान लिया, "किसी बीड़ी का इश्तहार है जो बढ़िया खुशबूदार असली तम्बाकू से बनी है। जिसके पीने से दिमाग ताजा रहता है, आँखों में रोशनी बढ़ती है, बदन में फुर्ती आती है, पेट साफ होता है और दिल पुख्ता बनता है। चन्द्रशेखर आजाद और सरदार पटेल इसी को पीते थे। नीचे न पीने वाले दो दर्जन देश प्रसिद्ध नेता, अभिनेता, साहित्य और विज्ञान वेत्ताओं के पीने के समर्थन में हस्ताक्षर हैं।"

"निरे घोंच ही निकले। यह बीड़ी का इश्तहार नहीं है। तुलसी-जयन्ती का आमंत्रण है।" मित्र ने कराहा।

'कमाल है" हमारे श्रीमुख से निकला, "रजत, स्वर्ण और हीरक जयन्ती तो सुनी थीं, यह तुलसी जयन्ती कितनी अवधि के पश्चात..."

"अरे भाई, वही अपने पुराने तुलसीदास जी..."

"बनो मत यार, यह भी कोई पद-स्थित [प्रतिष्ठित नहीं] नेता की वर्ष गाँठ है जो वर्ष में छः बार मना ली। अभी दो महीने पहिले तो अखिल भारतीय स्तर पर तुलसी जयन्ती का आयोजन हुआ था।"

"तेरी कसम, वही तो मजा है। कुछ काम निकालना होगा। उद्घाटन-कर्ता केन्द्र के प्रसिद्ध मंत्री हैं। तभी तो विनीत लोगों में साहित्यकारों के अतिरिक्त वकील, डाक्टर और उद्योग-पति शामिल हैं: ये लोग समय पड़ने पर सिवाय वर-पक्ष के किसी के भी प्रति विनीत नहीं होते।"

"इस चलन से मुझे घोर घृणा है। उच्च कोटि के साहित्यिक कार्य-कलापों में घुस कर ये राजनीतिक नेता भयंकर प्रूफ मिस्टेक की तरह रस-भंग कर देते हैं।"

"शुद्धि-पत्र की भाँति आवश्यक हो गये हैं ये। चलो, शीघ्र चलें कुछ गड़बड़ होगी तो लौट आयेंगे समय पाच

चार कर दिया है। यह प्रथम उदाहरण है कि कोई साहित्यिक समारोह निर्धारित समय से पूर्व हो रहा है।"

"ठीक कहते हो। भारत में निर्धारित समय से पूर्व मौत को छोड़कर बुढ़ापे और बच्चे का ही आगमन होता है। चलो, चलें। मुझे तो कुछ साग में पीला नजर आता है।"

"यह साग में पीला क्या है, भाई"

"दाल में काला पुराना पड़ गया है न। यह नया मुहावरा है" हमने बता दिया।

× × × ×

दूर से ही देखा कि फाटक पर प्रधान संयोजक जी गेटकीपर पर करकापात कर रहे थे। यकायक राकेट गति से अन्दर चले गए। हमने पास जाकर धीमे से गेटकीपर के साथ सहानुभूति प्रकट की, "क्या माजरा है।"

"साहब, हम क्या करें" गेटकीपर ने बजाय प्रधान संयोजक के हमें उत्तर दिया, "पहले पाँच का टाइम रखा था। अब चार कर दिया है। यह बात किसी को मालूम ही नहीं हो पाई। हम से मनेजर कहते हैं कि साले नौकरों को ही लिवाला। सड़क से राहगीरों को ही पकड़ ले। साहब, हम लोगों को कहाँ से लायें। मंत्री जी चार से भी पहले चले आये। हम तो पास से चौकीदार को ही ला सकते हैं जो रात में सो लेने की वजह से दिन में जागता पड़ा रहता है।"

मुख्य भवन में पहुँचे तो वह जवाबी पोस्टकार्ड सा खाली था। गिनती के दो दर्जन श्रोता थे। हमारे पड़ौस में एक सज्जन और विराजमान थे। वे बोले, "आप इन्हें श्रोता न समझें। ये तो भाषण-कर्ता हैं। क्यों कि श्रोता एक भी नहीं है अतः जब तक मंत्री जी कुछ कहेंगे, ये श्रोताओं का अभिनय करेंगे।"

"और मंच पर जो भीड़ है "

"ये मंत्री जी के पिछलग्गू हैं। पतंग के पीछे पुछल्ला और कार के पीछे धूल होती है न।"

हमारे पहुँचने से पूर्व ही मंत्री जी तुलसीदास के चित्र को फूल-मालार्पण कर चुके थे। प्रधान संयोजक जी मंत्री जी का परिचय दे रहे थे, "मंत्री जी के विषय में कुछ भी कहना सूर्य को दियासलाई दिखाना है। आपको जो नहीं जानता वह मूर्ख है। देश की यदि भौतिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति हो रही है तो आपके कारण है और अगर अवनति हो रही है तो अन्य मंत्रियों की वजह से। इस महत्वपूर्ण पद पर रहकर भूतपूर्व मंत्री देश को धोखा देते रहे हैं। अब जनता ने आपको मौका दिया है। आज तुलसी-जयन्ती का उद्‌घाटन स्वीकार कर आपने हम सबके ऊपर अपार कृपा की है।"

दूल्हे के बहनोई से मुस्कराते मंत्री जी के गले में, प्रधान संयोजक जी ने, गुड़ के सेव सी बत्तीसी चमकाते हुए कीमती सुनहरी हार पहनाया और प्रेरणादायक दो शब्द कहने की अति विनम्र प्रार्थना की।

भवन में तालियाँ बज उठीं।

"अब ये बोर करेंगे।"

"केवल दो मिनट" वही पड़ोसी सज्जन बोले, "मंत्री जी के पास अधिक समय नहीं है। प्रधान संयोजक द्वारा परिचय पाँच मिनट, मंत्री जी का उद्‌घाटन-भाषण दो मिनट, जल-पान सात मिनट, फोटो पाँच मिनट। मंत्री जी के प्राइवेट सेक्रेटरी द्वारा यमराज की भाँति प्रदत्त उन्नीस मिनट समाप्त।"

"इससे लाभ ?" हमने जिज्ञासा प्रकट की।

"संस्था को मंत्री द्वारा अनुदान प्राप्त होगा और की हुई करतूतों पर पर्दा पड़ जायगा। ये श्रोता भी अपने-अपने भविष्य के लिए परिचय प्राप्त कर सकेंगे। बहाने की भँवर में फँसी तुलसी-जयन्ती तो स्टेशन तक मंत्री जी को पहुँचाकर प्रधान

संयोजक के लौटने तक चलेगी" पड़ोसी सज्जन ने जैसे रहस्योद्घाटन कर दिया।

अब मंत्री जी प्रेरणादायक दो शब्द कह रहे थे, "मुझे तुलसी जयन्ती का उद्घाटन कर बड़ी खुशी हुई है। मेरे पास (घड़ी देखकर) अधिक समय नहीं है अतः अधिक तो नहीं कह सकूँगा। मैंने बचपन में अनेक बार तुलसीदास कृत वाल्मीकि-रामायण को राधेश्याम की तर्ज में सुना है और झूम झूम उठा हूँ [इसी समय लगभग एक मिनट तक तालियाँ लय के साथ बजती रहीं। हम भी तालियाँ बजा उठे और प्रथम बार यह समझने में असमर्थ रहे कि हम प्रशंसा में तालियाँ बजा रहे हैं या निन्दाभिव्यक्ति को] तुलसी महाकवि का एक ही स्वप्न था कि रामराज्य की स्थापना हो। इसलिए देवियो और सज्जनो! यदि आप रामराज्य अपनी आँखों से देखना चाहते हैं तो हमें ही अपना अमूल्य वोट दें, बस, जय-हिन्द।"

और मंत्री जी जलपानार्थ तीर से ऐसे बाहर गए जैसे सदन से वाक आउट कर गये हों। आधी मिनट लम्बी तालियों की गड़गड़ाहट के बाद खाली बेन्चें और कुर्सियाँ ऐसी पड़ी थीं जैसे खोमचा उठ जाने पर दोने पड़े रह जाते हैं। श्रोता भी लपक कर चल दिये थे।

संभवतः यह तुलसी-जयन्ती का इन्टरवल था।

पड़ोसी के पूर्व कथनानुसार ठीक बारह मिनट बाद तुलसी जयन्ती पुनः आरम्भ हुई। किन्तु जो पहले श्रोता थे वे अब मंच पर थे। एक वक्ता ने अन्तर्धान श्रोताओं के सम्मुख भारत का आदर्श रखा, "अखिल अयोध्या का राज्य हस्तामलक था किन्तु स्पर्श तक नहीं किया।"

पड़ोसी हँसा, "आप जानते हैं इन साहब को!"

हमने नकारात्मक सिर हिला दिया

"टूटे मकान के पीछे बड़े भाई से मुकद्दमा चल रहा है इनका, पाँच वर्ष हो गये हैं। अग्रज का मुख-कमल तक देखना पसन्द नहीं करते" कहते हुए कन्धे उचका दिये।

अब एक आधुनिका का भाषण आरम्भ हुआ। सच ही वक्ता महोदया की वाणी ही मधुर न थी, वह स्वयम् भी मनोहारिणी थी। उन्होंने स्पष्ट घोषणा की, "सीता को इतना यश कदापि न मिलना चाहिये था जितना कि मिला। बेचारी उर्मिला ने भरे यौवन के चौदह वर्ष शून्य में ही बिता दिये। संसार में इस त्याग की कोई तुलना नहीं।"

पड़ौसी सज्जन तो जैसे ज्ञान-कोष थे। पुनः हँस दिये, "इनके पतिदेव अध्ययन हेतु दो वर्ष के लिए अमरीका जाना चाहते हैं। आर्थिक कठिनाई के कारण इन्हें नहीं ले जा सकते। उर्मिला की भक्तिन इन देवी जी ने पत्थर पर लकीर खींच दी है कि अमरीका जाने पर तलाक होगा। मैं अपनी जवानी के दो वर्ष फालतू नहीं गवां सकती।"

अब हमारा बैठा रहना मुश्किल हो गया था। हवा खाने बाहर निकल आये। हमारे साथ ही दो और श्रोता उठ आये।

"कहिये तुलसी-जयन्ती कैसी लग रही है आपको?" हमने यों ही पूछा।

"जी" बीड़ी सुलगाते हुए उनमें से एक ने कहा, "मैं तो माइक वाले के साथ हूँ।"

"और मैं फर्श वाला, सरकार। साथ ही ले जाऊँगा। बदल जाने में देर नहीं लगती" दूसरे ने स्वयम् ही अपनी उपस्थिति का कारण बता दिया।

थोड़े समय बाद हम पुनः भवन में जाकर बैठे। विद्वान अध्यक्ष महोदय अपना अभिभाषण दे रहे थे। मंच के वक्ता पुनः श्रोता बन सामने जा बैठे थे मैं अब अधिक समय नहीं

लूँगा। गोस्वामी जी का उद्देश्य कह वक्तव्य समाप्त कर दूँगा। बालकाण्ड की एक चौपाई में सम्पूर्ण उद्देश्य समाहित है। वह चौपाई इस प्रकार है ... ..."

ठीक इसी क्षण प्रधान संयोजक जी ने भवन में तीव्रता से, प्लेटफार्म में इंजन की तरह प्रवेश किया और विधिवत घोषणा की, "जिन लोगों ने भाषण दिये हैं वे चाय पीने चलें।"

जैसे पारिश्रमिक पाने का अवसर दिया गया हो। श्रोताओं में अजीब खींचा-तानी काना-फूँसी मच उठी। अध्यक्ष महोदय वक्तव्य रोक प्रधान संयोजक जी को ऐसी कराल आँखों से ताक रहे थे जैसे समूचा ही कच्चा निगल जायेंगे। उन्हें प्रधान संयोजक जी का सहसा प्रवेश नमकीन रायते में देशी तम्बाकू सा अनुभव हुआ। अध्यक्ष महोदय [जो भारतव्यापि ख्याति के हिन्दी-मठाधीश थे] की जलती आँखों को देखकर प्रधान संयोजक जी सहम गये और झिझकते से जैसे विवश होकर बोले "अच्छा तो भाषण न देने वाले भी चाय पीने चलें।"

और हमें लग रहा था कि सड़क पर दंत-मंजन बेचने वाला जब साँप नेवले की लड़ाई दिखाने जा रहा हो, भारी भीड़ उत्सुकता वश चिबलिखी खड़ी हो, तभी कहीं से दुर्दान्त साँड़ उसी ओर अर्रा पड़े; भीड़ भाग खड़ी हो और मंजन-विक्रेता हक्का बक्का बना टापता खड़ा रह जाये।

× × × ×

तुलसी-जयन्ती समाप्त हो चुकी थी। हम दोनों मित्रों ने तय किया कि कुछ भी हो गोस्वामी जी को प्रणाम तो करते ही चलें। चित्र के सामने हमने करबद्ध हो नत-सिर श्रद्धांजलि अर्पित की। आँख जो उठी तो तुलसीदास जी के स्थान पर सूरदास जी मुस्का रहे थे। हमने मित्र की ओर संकेत किया तो सूरदास जी बोल उठे, प्रिय बालको मैंने तो बहुत कहा कि पत्रिका पृष्ठ-चौक की

इसी कालम-गली में तुलसी भैया भी रहते हैं। उनका काम है, उन्हीं को लिवा ले जाओ। किन्तु वे माने ही नहीं, बोले, तुलसीदास को पहिले ही कोई निकाल ले गया है। हमारे पास भी इतना समय नहीं कि तुलसी बाबा को तलाश करते फिरें। जो माला पहनायेंगे उनके लिए आप और तुलसीदास में कोई अंतर नहीं है और मुझ अंधे को घसीट लाये। किन्तु अच्छा हुआ कि आज तुलसी भैया नहीं मिले। वे देखकर तृप्त होते मैंने सुनकर ही भर पाया। तुम्हारी पद चाप पहली आहट थी जो श्रद्धा से भरी मुझ तक आई।"

सूरदास जी के कथन में उनके पद जैसा भोलापन और दर्द भरा था। हमने श्रद्धाभाव से पुनः सिर झुका दिया।

संस्था की सीमा से बाहर कदम रखते ही हमने देखा कि फाटक भीतर से बन्द हो रहा था। पौने पांच बज चुके थे तथा लोगों का आना अभी आरम्भ नहीं हुआ था।

—o—



"मैं सब जानता हूं कि किस के पास, किस साल, कौनसा पेपर सैट करने को होता है"

प्रोफेसर विद्यारत्न का इण्टरव्यू

(भारतवर्ष के किसी विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कोई डिग्री कालेज। इण्टरव्यू-कर्त्ताओं में प्रिन्सिपल, वाइस प्रिन्सिपल, एक्सपर्ट, हिन्दी-विभागाध्यक्ष एवं कालेज के सेक्रेटरी। डा० विद्यारत्न को आवाज दी जाती है। 'नमस्ते', 'आइए', 'स्थान लीजिए', 'धन्यवाद' के औपचारिक आदान-प्रदान के बाद डा० विद्यारत्न कुर्सी से उखड़े-से चिपकते हैं। मुसकराना, झुकना, धीमे बोलना, फाइल पलटना, चौंकना आदि आंगिक क्रियाओं का अनुमान सहज-सम्भाव्य है।)

प्रिन्सिपल—बड़ी दूर से आए हैं आप

डा० विद्यारत्न—जी हाँ, नौकरी पुरुष को और वर वधू को जितनी दूर ले जाए, थोड़ा है।

प्रिन्सिपल—स्पष्टवादिता के लिए क्षमा कीजिए। आप की एप्लीकेशन में कई गल्तियाँ हैं, क्लास कैसे ले सकेंगे आप ?

डा० वि० र०—किन्तु मुझे तो हिन्दी पढ़ानी है, अंग्रेजी नहीं। फिर भी आप एकदम सही कहते हैं। एप्लीकेशन में ही त्रुटियाँ करने वाला क्लास कैसे लेता होगा। मुझे अंग्रेजी के उस प्रोफेसर से पूर्ण सहानुभूति है जिससे मैंने यह एप्लीकेशन लिखवाई है।

सेक्रेटरी—आपका एकेडेमिक कैरियर विचित्र रहा है। एम० ए० में फर्स्ट क्लास और...।

डा० वि० र०—जी हाँ, किसी की कब और कहाँ प्रतिभा चमकती है कौन जानता है। दिन में दिखाई न पड़ने वाले तारे रात में कैसे चमक पड़ते हैं। और फिर संस्कृत के किसी कोर्स में एक श्लोक आता है जिसका अर्थ है कि पुरुष के भाग्य को दैव भी नहीं जानता कि कब फलेगा। मैं हाई स्कूल में थर्ड रहा और इंटर सप्लीमेन्टरी से किया। आप क्या, मेरे सभी रिश्तेदार कहते थे कि यह लड़का अब क्या पढ़ेगा, पर मैंने भी साहस नहीं छोड़ा। संस्कृत के किसी कोर्स में एक और श्लोक आता है जिस का अर्थ है कि उद्यमी पुरुष को ही लक्ष्मी वरती है। तब मैंने विशारद किया, साहित्यरत्न किया फिर अंग्रेजी लेकर बी० ए० किया और तब हिन्दी में एम० ए० का अवसर मिला। इस वक्रमार्ग से प्रत्येक आगे नहीं बढ़ता। फिर यह तो सर्वविदित है ही कि आधुनिक शिक्षा प्रणाली योग्यता की सही कसौटी नहीं है।

वाइस प्रिन्सिपल—आपने अध्यापन को ही क्यों चुना।

डा० वि० र०—यहाँ तो मुझे एकदम सही कहना पड़ेगा। बात यह है कि मैंने अनेक कार्य किए। डाकखाने में क्लर्क रहा,

शू-वर्कशाप का मैनेजर रहा, बीमा कम्पनी की एजेन्टी की और एक समाचार-पत्र का सम्पादक भी रहा। मैंने अनुभव किया कि इन सभी में थोड़ी-बहुत प्रतिभा और परिश्रम की आवश्यकता पड़ती है। उधर मैंने यह भी देखा कि मुझ से भी गए-बीते साथी सफल अध्यापक हो गए हैं और पेट पाल रहे हैं। बस, मैंने भी इस लाइन को चुना और पी० एच० डी० करने में जुट गया और कर भी ली।

प्रिन्सिपल—सफल अध्यापक के नाते आपकी अन्य विशेषताएँ क्या हैं ?

डा० वि० र०—आपके कालेज में कोई फंक्शन हो या न हो, मैं आपके मनोनुकूल भीड़ एकत्र कर दूँगा। मेरा परिचय-क्षेत्र इतना विस्तृत है कि दो हजार रुपये का कवि-सम्मेलन दो सौ रुपये में होगा। पाँच सौ लेने वाला कवि बिना टिकट आने को उत्सुक होगा। इसी प्रकार संगीत-सम्मेलन के विषय मे समझिए। जिस नेता को जिस काम के लिए चाहेंगे, बुला सकेंगे। सीटिंग अरेन्जमेंट, स्वागत, पैम्फलेट आदि का प्रबन्ध मैं किया करूँगा। कहीं कोई कालेज का काम अटका हो, मुझे भेजिए। फर्नीचर आना हो या सीमेन्ट का परमिट, सब काम दो मिनट के होंगे। छात्रों से जो मैं चाहूँगा, करा सकूँगा। छात्र-संघ में जिसे आप कहेंगे वही प्रेसीडेन्ट या सेक्रेटरी होगा। गरज यह कि मुझे आप एक बार रख कर निकाल न सकेंगे।

प्रिन्सिपल—क्या मतलब !

डा० वि० र०—मेरा आशय है कि आपके कालेज में मैं इतना लोक-प्रिय और आवश्यक स्थान बना लूँगा कि फिर आप मुझे निकालने की कल्पना भी नहीं कर सकते।

सेक्रेटरी—आप जानते हैं कि हमारा यह विभाग एकदम नया है केवल एक वर्ष पुराना, नतीजे की चिन्ता रहती है

डा० वि० र०—आप इसकी चिन्ता न करें। मैं सब जानता हूँ कि किस के पास, किस साल, कौनसा पेपर सैट करने को होता है। अध्यक्ष महोदय की भी चिन्ता दूर कर दूँगा।

विभागाध्यक्ष—आधुनिक कवियों में से आपका प्रिय कवि कौन-सा है ?

डा० वि० र०—श्री सुमित्रानन्दन पन्त।

विभागाध्यक्ष—उनके संग्रह 'आधुनिक कवि' पर कुछ प्रकाश डालिए।

डा० वि० र०—किन्तु वह तो इस वर्ष एम० ए० के कोर्स से हट गया है। रश्मि-बंध आ गया है।

विभागाध्यक्ष—कहिए, रश्मि-बंध के ही विषय में दो शब्द कहिए।

डा० वि० र०—किन्तु इस वर्ष तो आपको रश्मि-बंध पढ़ाना ही नहीं है। मैंने एम० ए० के छात्रों से मिल कर पेपर्स का पता लगा लिया है।

विभागाध्यक्ष—क्या आप एम० ए० में संस्कृत का पेपर ले सकेंगे ?

डा० वि० र०—क्यों नहीं। पाली भी पढ़ा सकूँगा। मेरे पास इतनी सहायक पुस्तकें हैं कि उन्हें प्रत्येक छात्र को दे सकता हूँ।

एक्सपर्ट—आपकी थीसिस का क्या विषय है ?

डा० वि० र०—प्रकाशित शोध-प्रबन्धों की उपलब्धियाँ।

एक्सपर्ट—नाम क्या रखा है। थीसिस दिखाइए तो।

डा० वि० र०—नाम ही तो बताया है। पाण्डुलिपि यह लीजिए।

(दो मिनट का मौन)

डा० वि० र०—एक ही थीसिस लिखने से पर्याप्त ज्ञान-वृद्धि होती है, फिर मुझे तो सभी थीसिसों का अध्ययन करना पड़ा है।

एक्सपर्ट—अभी तक प्रकाशित क्यों नहीं हुई ?

डा० वि० र०—यों तो मैंने दर्शन-असुविधा के कारण तीन गाइड बदले। किसी भी गाइड की कोई भी थीसिस अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। एक महाशय तो डी०लिट् हैं किन्तु आप को एक लेख भी उनका दिखाई नहीं पड़ेगा और मेरी थीसिस के कुछ अंश तो जब मैं बी० ए० में था, प्रकाशित हो चुके थे। फिर भी मैं एक बार फिर सच कहूँगा कि प्रकाशक का विचार है कि इसमें लेखक का मौलिक कुछ भी नहीं है।

एक्सपर्ट—वही तो, वही तो। आपने इसमें कुछ थीसिसों का सार-मात्र दे रखा है और नाम रखा है "प्रकाशित शोध-प्रबन्धों की उपलब्धियाँ"।

डा० वि० र०—सार नहीं, सार-संक्षेप। जहाँ तक नाम का प्रश्न है, आज का चलन ही यह है कि जिसके पास तेल निकालने का एक कोल्हू भी है वह भी उसका नाम 'राष्ट्रीय उद्योग केन्द्र' रखता है। बड़े-बड़े विराट् कविसम्मेलन १०' × ८' की बैठक में बिना किसी कवि के सानन्द सम्पन्न हो जाते हैं। रही मौलिकता की बात सो आज के बरसाती युग में किस की थीसिस में क्या मौलिकता होती है ? जहाँ तक मेरी मौलिकता का प्रश्न है, सार-संक्षेप की पेटेंट विधि ही यह है कि जो कम्पोज करना या चुनना है उसके नीचे अंडर लाइन कर दीजिए। आजकल अनेक प्रसिद्ध ग्रंथों के ऐसे ही संक्षेप चल रहे हैं, पर किसी ने भी उन्हें अमौलिक नहीं कहा और वे इन्हीं संक्षेपों के सहारे प्रसिद्ध लेखक कहलाते हैं।

एक्सपर्ट इसमें मेरी थीसिस का सार-संक्षेप नही देखाई पड़ता

डा० वि० र०—अच्छा, धोखा दिया गया है मुझे। थीसिसें भी छोड़ दी गई हैं, मुझे ज्ञात नहीं था।

प्रिन्सिपल—किसने धोखा दिया है, आपको ?

डा० वि० र०—जी, मेरा आशय टाइप करने वालों से था

प्रिन्सिपल—आपकी कोई अन्य विशेष योग्यता ?

डा० वि० र०—जी हाँ, यह लीजिए, सेक्रेटरी महोदय के नाम।

(सेक्रेटरी पत्र खोल कर पढ़ता है। छपे पैड पर केवल इतना लिखा है।)

प्रिय...आपका विभाग बिलकुल नया है। मेरा परामर्श है कि आप डा० वि० र० को रख लें। मेरा विश्वास है कि वे सभी प्रकार से इस पद के योग्य हैं। आप के कालेज के दोनों अध्यापकों को इस वर्ष एक्जेम्पशन मिल जाएगा। शेष आप समझते ही हैं।

आपका हितैषी—

....

वाइस चान्सलर...

—०—



दोपहर के दो बजे बिना जली लालटेन ले आरती
उतारनी आरम्भ करदी

निद्राबिहारी लाला नयनसुख जी

ऐसे ऐसे 'सहस्त्रबाहुओं' पर हमारा आँख-पात हुआ है, जो बाँहें न होने के बल पर ही माँग खाते हैं, ऐसे दुर्लभ नर 'केसरीसिंह' के दर्शन हुये हैं जो स्वरूपमन्ती आधुनिका श्रीमती के पुकारने ललकारने पर भी स्वर्गवासी चूहे को सूप में सजा घर से बाहर भूमिगत करने में असमर्थ होते हैं। एक ऐसे 'हृदयेश्वर' भी गले पड़े जो बिन ब्याहे रहकर ही अस्सी बरस के हो चले; एक ऐसे 'शिवचरण' भी नयन-पन्थ में चुभे हैं, जो जहाँ भी गये, सत्यानाश कर दिखाया किन्तु लाला नयनसुख जी मीनाक्षी

नहीं हैं तो बिनाक्षी भी नहीं हैं और न एकाक्षी ही। उनके कपाल में आँखों का एक सौ एक प्रतिशत सुख बाँट में आया है।

नींद की बात यह है कि जिस प्रकार जिन्दगी के प्लेटफार्म पर मौत का कोई टाइम टेबुल नहीं है उसी प्रकार लाला नयन-सुख के खाते में भी निद्रा-निमित्त कोई समय सारिणी नहीं है। गणेश-वाहन को जैसे सिंह की मौसी दबोच लेती है, वही दशा लाला जी की निद्रा के मुलायम पंजों में होती है, यानी बिना शोर और गजब की फुर्ती के साथ अचानक। सारांश यह कि समानुपात के नाक में दो छेद होने पर भी, साहब के सामने क्लर्क की भाँति, आवाज नहीं निकलती और मजा यह कि लाला जी की दो अदद साबुन आँखें नींद में भी जागरण मुद्रा के समान विस्फारित रहती हैं। परिणामतः दर्शक असली नकली दवा की तरह लाला जी के जागने और सोने का अन्तर शीघ्र ही नहीं कर पाता।

लाला जी की दुकान पर कई बार आवारा गाय परात से बेसन खाती रही और लाला जी उसे अपलक निहारते रहे। पड़ो-सियों पर लाला जी की हनुमान आसन पर गरुड़ मुद्रा में अभिव्यक्त इस गौ श्रद्धा का अपूर्व प्रभाव पड़ा किन्तु एक दिन जब इसी क्रिया में एक गोस्वामी दत्त-चित्त हुआ और लाला जी तब भी हनूमान आसन पर गरुड़ मुद्रा में स्थापित रहे तो पड़ौसी दुकानदारों का माथा ठनका। सामने की दुकान पर लंगोट बाँध भाँग घोटने में तल्लीन भगत जी से नहीं रहा गया तो वे सीधे हाथ में लोड़ा सँभाले आ ही तो गये। लाला जी को क्या सूझा कि दोपहर के दो बजे होने पर भी बिना जली लालटेन ले भगत जी की आरती उतारनी आरम्भ करदी।

भगत जी ने लोड़े से बजाय बैल के सींग तोड़ने के लाला जी की लालटेन फोड़ दी। लाला जी ने तुरन्त आँखें झपकाईं और बोले, "क्षमा करना, मैं तो भाई, सो गया था और शिव-तपस्या में

ऐसा डूबा था कि नाडिया के साथ दाहिने हाथ में डमरू लिये भोले बाबा प्रकट हो गये, मैं उन्हीं की आरती उतार रहा था।"

झेंपकर भगत जी अपनी दुकान पर चले गये और जुम्मन खाँ अपने बैल को खींच ले गया। लाला जी की गौसेवा का रहस्य भाखरा-नंगल के फाटक सा खुल गया।

इस अचानक नींद ने लाला जी को हानि भी पहुंचाई है। कचहरी में लाला जी को एक बार आवाज लगने से पहले ही नींद आ गई थी। फलतः हाजिर न होने के कारण आखिरी तारीख में मुकदमा हार गये। वकील ढूंढ़ता ही रह गया। ऐसा भी हुआ है कि गाड़ियाँ निकल गई हैं और लाला जी टिकट दिखाते रह गये हैं। ऐसा भी हुआ है कि सामान सँभाल रहे हैं और स्टेशन निकल गया। इस प्रकार कई बार रेल छूटी है तो अनेक बार स्टेशन ने धोखा दिया है।

एक बार ऐसा हुआ कि लाला जी भीड़ के कारण फर्स्ट क्लास में जा फँसे। रात का वक्त, अधिक तलाश की गुंजाइश नहीं। किन्तु वहाँ पर भी पैर फँसाने को जगह नहीं। हारकर मुसाफिरों के मुर्दा अददों पर ही पसर गये।

गाड़ी पूरी रफ्तार पर थी। रात के दो बजे का समय रहा होगा। लाला जी को जागा समझ सब निश्चिन्त सो गये। तभी अचानक कहीं से चार पाँच डाकू फट पड़े। रिवाल्वर तन गये। यात्रियों की घिग्घी बँध गई। सहसा लाला जी और पास लगे अददों को उठा उठाकर डाकुओं को थमाने लगे। यात्रीगण बे-आवाज दाँत पीस रहे थे किन्तु विवश थे और लाला जी के हाथ थे कि क्रेन की भाँति चालू। जब डाकू भाग गये तो यात्रियों ने लाला जी को घेर लिया। लाला जी ने पुलिस में निम्न बयान दिया, "मुझे कुछ नहीं मालूम। मुझे खुली आँखों नींद आ जाती है। एक बार एक बारात में मैं जितनी बार दिशा मैदान गया, बिना लोटे के हो लौटा। डिब्बे में डाकू कब आये और कब गये,

मुझे पता नहीं। मैं तो सो रहा था। सपने में दीवाली के दो दिन रह गये थे। अपना घर कलई से पुता हुआ साफ पड़ा था। आँगन में सारा सामान बिखरा पड़ा था। मेरी घर वाली अन्दर सामान लगा रही थी और मैं उसे उठा उठाकर थमा रहा था।"

पुलिस ने लाला जी को छोड़ दिया। सभी के सामने डाकू और सामान भी तो ले गये थे। फिर यात्रियों ने अपने गले और हाथों की वस्तुयें भी तो डाकुओं को सौंप दी थीं, उन्हें तो लाला जी ने नहीं दिया था। यह दूसरी बात थी कि लाला जी की अटैची बच गई थी क्योंकि उस पर वे स्वयं बैठे थे।

लाला जी के इस रोग (या स्वास्थ्य की कुँजी) को लालाइन ने शादी के तुरन्त बाद ही जान लिया था, किन्तु इसकी भी एक लघु कथा है। अकेले में लालाइन लाला जी को मधुर वार्ता के सहारे कुछ आवश्यकता से अधिक खिला पिला रही थीं कि लाला जी एक दम सो गये। जब मुँह खोले और लड्डू थामे काफी देर हो गई तो लालाइन घबराईं और "उनकी आँखें तो फटी की फटी रह गई हैं" चीख मार कर सास की गोद में बेहोश होगईं। माँ ने जो अपने लाड़ले को देखा तो पूत की करतूत को समझ गईं। होश आने पर लालाइन ने भी माजरे को जाना। रात को सुख-शैया पर लाला जी ने पुनः समझाया, "दुआ दो इस नींद को जो तुम्हें मुझ जैसा पति-परमेश्वर मिला। -देखने गया तो सो गया, गोद भरने गया तो सो गया, भाँवरों पर तो न जाने कितनी बार सोया।"

"हाय दैया" कुरूप लालाइन आश्चर्य से शरमा उठीं, "और मै हर बार समझी कि मेरे रूप शृङ्गार को देख आपकी आँखें पलक झपकाना भूल गई हैं।"

इस नींद ने लाला जी के रहन सहन पर भी प्रभाव डाला है पहले लाला जी तलवार कट मूँछें रखते थे और निर्मुच्छों को

नामर्द कहते थे किन्तु इस कम्बख्त नींद ने उनको ही निर्मुच्छ बना दिया। बात यों हुई कि जिस समय नाई मूँछों पर तलवार की धार रख रहा था, लाला जी को नींद ने आ घेरा और खुली आँखों से कभी कभी आने वाली झपकी ली। इस झटके में उस्तरा भी चल गया, साथ ही नाक के ठीक नीचे के बाल भी घिसट गये। दुर्घटना तो यों बची कि उस्तरे का रुख अधरों की ओर था। उन्हें अब भी यह कल्पना डराती है कि अगर कहीं उस्तरे की धार नाक की ओर होती तो निश्चय ही हरी भिंडी की चोंच सा नाक का गुद्दा जमीन पर आ रहता। तब से लाला जी मूँछें तो रखते ही नहीं (ताकि नाक के नीचे उस्तरा कम से कम अवधि तक रहे) शेव में भी मूँछें सबसे पहले साफ कराते हैं ताकि नींद से फिर हानि की संभावना न हो।

यों इस नींद के कारण अनेक छोटी मोटी घटनायें घटती रहती है जो उनकी नींद की कहानियों में जुड़ती रहती हैं। जैसे हलवाई की दुकान पर गये। बर्फी के थाल पर हाथ रखा (भाव पूछने के लिये) और सो गये। अब हलवाई है कि लगातार डाँट रहा है, "क्या थाल लेकर भागोगे?" मगर लाला जी हैं कि बेहरे से बहतर। सिनेमा देखने गये और सीट पर विराजते ही नींद मे गोता लगा दिया। खेल समाप्त हुआ तो हाल खाली होने पर गेट कीपर ने झकझोरा। अब लाला जी हैं कि दृढ़तापूर्वक बहस कर रहे हैं, "अभी खेल शुरू ही कहाँ हुआ है?"

लाला जी के अशिक्षित रह जाने का कारण भी यह नींद ही है। कम से कम लाला जी का यही कहना है। परीक्षा-भवन में प्रश्न-पत्र का शीर्षक पढ़ा कि नींद आ गई। लाला जी के पिता ने लाख कोशिश की कि लाला जी की गर्दन में डोरी का फंदा डालकर स्वयं दरवाजे की चौखट पर बैठ जायें ताकि नींद आते ही झटका दे सकें। किन्तु ऐसा करने की उन्हें आज्ञा नहीं मिली, परिणामतः लाला जी को स्कूल से छुट्टी मिल गई।

कुछ घटनायें पर्याप्त मनोरंजन प्रदान करती हैं। उदाहरण के लिये जब वे पहली बार ससुराल गये तो वृद्ध पड़ौसी से परिचय हुआ। पड़ौसी शतरंज के माहिर थे। लाला जी भी अपने को कम नहीं समझते थे। पड़ौसी महाशय ने शर्त रखी कि वे एक-एक चाल घन्टों में चलते हैं। लाला जी ने शर्त मंजूर कर ली। उनको भी अपनी अदा पर नाज था। असल बात तो यह थी कि लाला जी ने कभी भी कोई पूरी बाजी खेली ही नहीं थी। वे एकाध चाल चलकर सो जाते थे और फिर उनकी बगल से कोई और ही खेलता रहता था।

बाजी जमी, पड़ौसी ने एक चाल दस मिनट में चली। लाला जी ने जवाबी चाल तुरन्त चल दी। पड़ौसी ने दूसरी चाल में आध घण्टा लगाया। लाला जी ने किसी प्रकार नींद को जब्त किया और पुनः जवाबी चाल तुरन्त चल दी। इस बार पड़ौसी ने बहुत देर करदी। लाला जी सो गये। पड़ौसी अपनी चाल चलकर इन्तजार में डूब गये। हुआ यह कि वृद्ध तो थे ही, उन्हें भी झपकी आ गई। इसी बीच लाला जी ने पड़ौसी का ऊँट, हाथी और वजीर अपनी जेब में रख लिये। पड़ौसी की जो आँख खुली तो लाला जी को झिझोड़ा, "मेरा ऊँट कहाँ गया।"

"मैंने मार दिया होगा"

"और हाथी"

"वह भी मार दिया होगा"

"अरे, वजीर भी गायब है" पड़ौसी वृद्ध चीखे।

"वह भी मार दिया था" अचानक बाजी जीती समझ लाला जी चहक उठे।

"कहाँ से मार दिया होगा, कोई रास्ता भी तो हो" वृद्ध महाशय कुछ नाराज हो गये

"मारे नहीं गये तो कहाँ समा गये" लाला जी की भी आवाज कुछ गरम हुई।

तू तू मैं मैं के बाद शतरंज उठ गई। लाला जी जो खडे हुये तो जेब से वलबलाता ऊँट बिसात पर गिर पड़ा। पड़ोसी चौंके तो लाला जी ने हाथ डाल हाथी और वजीर भी निकाल दिये। "बात यह हुई" लाला जी ने नम्रता पूर्वक सफाई दी, 'मैं सोगया था और सपने में फड़ पर दिन भर की बिक्री को सँवारने के लिये एक एक रुपये की रेजगारी के ढेर लगा दिये थे। उन्ही को एक एक कर जेब में रख रहा था कि आपके ऊँट हाथी और वजीर हाथ में आगये।"

दूसरा उदाहरण लाला जी के गौने का है। जिस दिन सुसराल गये, उसी रात को लगभग तीन बजे सास जी के पेट में दर्द हुआ। वे शौचालय की ओर गईं किन्तु घबराकर पलट पड़ीं। दर्द बन्द हो गया था। उन्होंने हाँफ हाँफ कर, डर डर कर, हर कमरे में कह दिया। सारा घर जाग गया। शौचालय में चोर बैठा था। छतों पर होकर पड़ोसी आगये। घर के अन्दर आँगन मे भीड़, घर के बाहर दरवाजे पर भीड़। पौरी में आवागमन बन्द। कारण पौरी में ही शौचालय था और उसी में चोर कुण्डली मारे बैठा था।

परस्पर परामर्श हुआ और पुलिस आगई। अब इतना साहस भी आगया कि पौरी में भीड़ एकत्र होगई किन्तु शौचालय में प्रवेश का साहस किसी सिपाही में भी नहीं था। क्योंकि सास जी के मुँह से यह भी निकल गया था कि चोर के हाथ में रिवाल्वर है।

लोगों ने पुलिस को लानत मलामत देना आरम्भ किया तो एक राजपूत सिपाही, जैसे शहीद होने जा रहा हो, शौचालय की ओर बढा। किवाडों तक ही पहुँचा था कि अन्दर से मैं···मैं···की आवाज आई राजपूत सिपाही को पसीना आगया, वह फुर्ती से



पीछे [illegible]। और तब शौचालय से आवाज आ रही थी, "मैं···मैं ··हूँ लाला नयनसुख···, बैठे बैठे नींद आगई थी।"

× × × ×

लाला नयनसुख का कहना है कि उनका वंश अति प्राचीन है और उनके पूर्वज लंका से आकर भारत में बसे थे। हम उनकी इस बात का समर्थन करते हैं और आगे जोड़ते हैं कि उनके पूर्वज जो लंका से आये थे, कुम्भकरण के चचेरे तयेरे खानदानी अवश्य रहे होंगे। और ईमानदारी के नाते लाला नयनसुख इसमें कोई आपत्ति नहीं उठाते बल्कि प्रमाण के लिये सहसा निद्रा-बिहार करने लगते हैं।

—०—



"अब आपके सामने कवि नं० १, ३, ४, ५, ७, ६, १० एवं १६...,नहीं आ सकेंगे"

प्रयोगवादी कवि-सम्मेलन

"अभी-अभी युगप्रवर्तक कवि ब्रह्मचारी श्री बिनगेय जी ने सभापति का आसन ग्रहण कर लिया है। मैं पुनः बताना चाहता हूँ कि इस कवि-सम्मेलन का लक्ष्य प्रयोगवादी कविता का शास्त्रीय

विवेचन नहीं है। कविताएँ सुनें और आनन्द लें। हाँ, तो अब आपके सामने कवि नं० १, ३, ४, ५, ७, ९, १० एवं १६..."

सहसा हाल में कुछ लोग तालियाँ बजा उठे। यों तालियों का गुच्छा हमारे पास भी था किन्तु हम चुप रहे। पड़ौसी सज्जन ने बताया, "संयोजक महोदय प्रोफेसर हैं। कक्षा में हाजिरी के समय नाम नहीं लेते, नम्बर बोलते हैं। कवि-सम्मेलन के विज्ञापन मे कवि क्रमशः अंकित हैं, उसी में से उपस्थित कवियों के नाम सुना रहे हैं। जिनके पास विज्ञापन है, वे उन कवियों को समझ रहे हैं। जान पड़ता है १६ वें कवि प्रयोगवाद के कोई अति प्रसिद्ध कवि हैं। अतः एकाएक तालियाँ बज उठीं। नया प्रयोग है न!"

"नहीं आ सकेंगे" संयोजक जी ने कहना जारी रखा, "फिर भी अनेक कवि बचते हैं जो आपका भरपूर मनोरंजन करेंगे। समय हो गया। सुबह के नौ बज चुके। श्रोता चाहें तो कविता के मध्य में भी आलोचना कर सकते हैं किन्तु शर्त एक ही है कि एक बार में स्वर एक ही हो। शान्ति के साथ सुनिये, आपकी धारणायें बदल जायेंगी। हाँ, तो कवि नं० २ आपके सामने अपनी कविता प्रस्तुत करते हैं।"

संयोजक जी की घोषणा के आधार पर हमने मंच पर श्री विनगेय जी का पता लगा लिया वर्ना हड्डियों के उस फ्रेम को तस्वीर न होने से सेनीटोरियम से धोखा देकर भाग छूटा टी० बी० का लाइलाज मरीज समझ बैठे थे। वे इस प्रकार क्रम से खाँस रहे थे कि किसी उखड़ी और फटी ताल का भ्रम होता था।

"मेरी पहली कविता है 'नींद उचटी'।" कवि नं० २ ने सर्व प्रथम अपनी कविता पढ़ी, "बल्ब है वेश्या..."

"गलत, बल्ब पुल्लिग है"

"अबे चुप भी रह। क्षमासिंह, रमेश, संदेश, संतोष, लक्ष्मी, शान्ति या रेवती, किसी से भी लिंग का पता चलता है?

नाम क्या ड्रेस से भी माँ-बाप तक धोखा खा जाते हैं। आप पढ़िये, बल्ब है वेश्या। वाह, रात में ही तो बिजली या बत्ती जलती है, वह भी कुछ ऊँचाई पर।"

हम बुधी श्रोताओं को देख चकरा गये। कवि ने पुनः आरंभ किया:—

बल्ब है वेश्या,
गुण्डे परवाने,
छा गये चहुँ दिस।
शोर मच गया; शुरू
धर पकड़; आगई—
छपकली की पुलिस।

"वाह, वाह। सुन्दर अति, सुन्दर अति। बस यह पता नहीं लगता कि श्रृंगार रस है कि वीर। बहरहाल रस कोई है अवश्य। हाँ, प्रयोगवादी सांग-रूपक रहा। दूसरी सुनाइये।"

"मेरी दूसरी कविता का शीर्षक है, 'दोपहरी':—
साबुन अनछुआ,
तौलिया पास है।
नल,
पानी बिना—
ठूँठ सा
उदास है।
साबुन अनछुआ,
तौलिया पास है।..."

"सुन्दर अति, सुन्दर अति" तालियाँ बज उठीं।

"अभी कविता पूरी नहीं हुई। कुछ पंक्तियाँ इस तरह और हैं।" कवि ने पंक्तियाँ सुनाईं:—

पटिया तप रही,
छाया छिप रही,

आफत पड़ी जान की !
हाय राम !
अर्थी है स्नान की ।"

"वाह, वाह, 'छाँवों चाहति छाँव' का नया प्रयोग है, अर्थी का नया सामान है। घर में दोपहरी का इससे साफ नक्शा हो ही नहीं सकता।"

"मेरी तीसरी कविता का शीर्षक है 'अद्वैत'। कविता इस प्रकार है—

मैं अकेला हूँ...
पर अकेला नहीं—
बन्द कमरा सही,
दर्पण तो रखा।"

"वाह, वाह, सुन्दर अति। कितना सच है। दर्पण है तो अकेला होते हुये भी अकेला कहाँ रहा। भगवान शंकर भी बुद्दका में पार्कर डुबोकर लिखते तो भी अद्वैत को इस प्रकार संक्षिप्त में विस्तार से न समझा पाते"

कवि बैठ गये तो तालियाँ फिर बजीं।

कवि नं० ६ ने हँसकर पढ़ना आरंभ किया,

"अगर कहीं मैं रोता होता,
तो क्या होता ?
रो
रो
रो
रो
ता
ता
ता
ता
होता होता होता होता"

कवि चुप हो गया। श्रोता समझ नहीं पाये तो कवि को कहना पड़ा, "कविता समाप्त हो गई।"

तालियाँ बजीं, "वाह वाह! न आँसू न हिचकी, न चीत्कार न सिसकी। वाह वाह, रोता होता तो क्या होता, बस रोता होता। भाई कमाल है, रोने के सभी कार्य कलापों का समन्वय होगया।"

कवि नं० ६ ने दूसरी कविता आरंभ की:—

"भोर का तारा प्रायः डूबा,
अभी सो रहे तेजा बंसी खूबा,
आँख मीड़ कुछ कुछ दीखा,
हॉकर आ इकदम चीखा,
'खबर आज की,
नहीं बनेगा—अब पंजाबी सूबा"

कवि चुप हो गया। श्रोता भी चुप रहे।

कवि ने तीसरी कविता पढ़ी:—

पासतर टूटी हुई बेरिया, बगल में शान्त,
मूत्र चित्रित बालुका की भित्ति पर,
एक टाँग उठा, खड़ा, नतसिर,
धीरज का बैंक ऊँट।"

श्रोता चुप थे। बड़े निराश हो कवि जी बैठ गये। उनके बैठते ही श्रोताओं को होश आया। वे समझ गये कि कविता अवश्य ही समाप्त हो गई है। एक दो छींक मार कर उन्होंने एकदम तालियाँ बजाई। तब तक मंच पर कवि नं० ८ पधार चुके थे। यह निर्णय करना मुश्किल था कि ये तालियाँ कवि नं० ६ की कविता-पाठ-समप्ति पर थीं अथवा कवि नं० ८ के स्वागतार्थ। कवि नं० ६ उचके भी तो श्री बिनगेय जी उनके कान पर कुछ इस तरह खाँसे कि कवि नं० ६ पडौसी पर बिना पूर्व सूचना के गिर पड़े

"क्या प्रयोगवादी कवि एक साथ कई कविताएँ ही सुनाता है?"

"जी, नहीं। मैं केवल एक सुनाऊँगा" कवि नं० ८ ने उत्तर दिया, "सुनिये—

कल्पना में स्टन्ट पिक्चर के हीरो।
यों हैल्थ में जीरो
चाल लड़खड़ाती सी
कमर बल खाती सी
ठहर ठहर
रात के सवा बारह
चुपचाप; देखा
इधर उधर
धीमे से दीवार फांद गये।
खिड़की के नीचे जा
शी···शी···
शी···
(खिड़की खुली)
डियर!
डार्लिंग!!
कूल एअर क्लोज लाइट
हाउ मून इज़ फुल एन्ड ब्राइट
कम डाउन!

इसी समय कवि ने स्वर बदला और बारीक आवाज में कविता आगे बढ़ी—

दिस नाइट डैडी इज इन
नौबाडी कैन कम
आई कान्ट गो
ममी इज फेथफुल!
हाउ वन्डरफुल

यू नाउ गो
डियर
डालिंग
आई विल नाट कम डाउन
अहा ! हा !
ढिरं
ढिरं"
हाल तालियों से गड़गड़ा उठा ।
"दिखा गई झुरंका"
"आधुनिक प्रेम की झाँकी है"
"बेकार युवक करे भी क्या ?"

"सब गलत, प्रयोगवादी कविता की टैकनीक में फिल्मी रोमांस को, अंडे में जर्दी की तरह घुसेड़ दिया गया है, बस ।"

'वन्स मोर' 'वन्स मोर' के कई स्वर उठे । कवि नं० ८ मुस्कराते उठे और मठारते हुये दूसरी रचना पढ़ी,

"मैं हम
तू तुम आप
वह वे
क्या कोई नाम हैं ?
फिर भी ये सर्वनाम हैं"

तालियाँ बजीं, "हाय हाय ! क्या तीर मारा है । व्याकरण के इस महादोष को आज तक कोई गुरु-घंटाल नहीं बता सका । व्याकरण-वाराह की पदवी मिलनी चाहिये ।"

आलोचना समाप्त हो गई । संयोजक जी दूसरी बार खड़े हुये, "मैंने आरम्भ में ही कहा था कि आज आपकी धारणायें बदल जायेंगी । प्रयोगवादी कविता रूढ़ियों में सिमिट कर नहीं चलती । नये आयाम क्षण की ऊँची गहनता ,नया ढंग प्रयोगवादी

कविता की विशेषताएँ हैं। भदेस भाषा और अनगढ़ भाव जैसी बात हम स्वयं कुछ नहीं कहते। आप स्वयं पहचानिये और सराहिये। कवि नं० ६ आपके सम्मुख युग-प्रवर्तक कवितायें कह गया और आप 'ऑफ फैन' से स्थिर रहे। जब हम उनकी प्रशंसाएँ छापेंगे तब आपको पता लगेगा कि वे कितनी महान रचनाएँ है। खैर, अब आपके सामने प्रयोगवाद की प्रसिद्ध रचना 'बूट फरोश' पेश होगी। आइये कवि नं० ११।"

इसमें सन्देह नहीं कि कवि नं० ११ अपने व्यक्तित्व से बूट फरोश ही लगते थे। पतले-दुबले, गोरा रंग, छोटी सी दाढ़ी, गोल टोपी, कुरता और अलीगढ़ कट पायजामा। उन्होंने सधे सुर में आरम्भ किया—

"जी हाँ, हुजूर, मैं बूट बेचता हूँ।
मैं तरह तरह के,
बूट बेचता हूँ
मैं सभी किसिम के बूट
बेचता हूँ!

जी, यहाँ बैठिये माल दिखाऊँगा,
गर हो पसन्द तो दाम बताऊँगा;
ये बूट खरीदे मस्ती में मैंने,
ये बूट खरीदे पस्ती में मैंने;
यह बूट पैर का दर्द भुलायेगा;
चर मर डियर को पास बुलायेगा;
जी, पहले पहले बहुत लाज आई,
थे बिगड़ उठे माँ बाप बड़े भाई;
जी, हाँ, जब बिकते अस्मत औ ईमान!
तब भली न मेरी जूतों की दूकान?

जी, सोच समझकर बहुत पेट की खातिर,
मैं बूट बेचता हूँ
जी हाँ, हुजूर, मैं बूट बेचता हूँ।

यह बूट सुबह का है, जाकर टहलें,
यह बूट गजब का है, ढाकर तह लें;
यह बूट आगरे का 'बेरी' मशहूर,
'फ्लेक्स' 'बाटा' यह रहा 'खजूर';
यह बूट पहाड़ी पर चढ़ जाता है,
जी, तंग न, दो दिन में बढ़ जाता है;
यह बूट भूख और प्यास भुलाता है,
जी यह मसान का भूत रुलाता है;
यह बूट बहुत हल्का, है हवा हुजूर,
यह बूट दुश्मनों की है दवा हुजूर;
मैं सदा सरल से और वक्त के साथी
बूट बेचता हूँ।
जी हाँ, हुजूर, मैं बूट बेचता हूँ।
जी, और बूट भी हैं, दिखलाता हूँ;
जितनी खूबी हैं सब समझाता हूँ;
जी, ब्राउन अथवा ब्लैक पसन्द करें,
जी, सतर रहें या वें सलवटें परें;
जी, बुरा मानने की इसमे क्या बात;
कर्तव्य बड़े होते हैं, ना जज्बात;
इनमें से भाये नहीं, नये लादूं ?
हर मंगल दिल्ली जाता, बतलादूं,
हाँ, भाव इन दिनों तेजी के छाये,
है सुना, विलायत से आर्डर आये;
मैं नये पुराने हर स्टाइल के
बूट बेचता हूँ।
जी हाँ, हुजूर मैं बूट बेचता हूँ

जी, कितना छोटा, जनम से पहले का ?
जी, मजाक था, इस नाप के बदले का ?
जी, चप्पलें भी मिल जाती हैं,
महीने दस चल जाती हैं;
जी, हर तरह के सेंडल उम्दा,
रंग कट सब के जुदा जुदा;

यह बूट ब्याह का है, यह गौने का,
यह बूट ब्याहुली का, यह छौने का;
यह बरखा में आफिस जाने का बूट,
यह रात गये घर चुप आने का बूट;
जी नहीं, दिल्लगी की इसमें क्या बात !
बेचता ही तो रहता हूँ दिन रात।

जी, सभी तरह के रखने पड़ते हैं,
नुकसान नफा सब सहने पड़ते हैं;
जी, बहुत देर लगगई, हटाता हूँ,
ग्राहक की मर्जी पर बलि जाता हूँ;
मैं बिलकुल अन्तिम और दिखाता हूँ,
'अब नहीं,' बहुत अच्छा, फिर आयें आप,
मैं नहीं समझता बूट बेचना पाप;
क्या कहूँ मगर लाचार हार, पग छू,
मैं बूट बेचता हूँ।
जी, हाँ हुजूर, मैं बूट बेचता हूँ।

तालियाँ बड़ी देर तक बजती रहीं। श्रोताओं ने इस कविता को बहुत प्रकार से सराहा और इस सीमा तक प्रभावित हुये कि मंच घेर लिया। कवियों को जूते बचाने मुश्किल हो गये। निदान निराश श्रोता बिना नया जूता खरीदे, अपने ही पहने, पूर्व स्थानों पर लौट आये

शान्ति स्थापित हो जाने के बाद कवि नं० १२ पधारे, "मैं दो मुक्तक पढ़ूँगा और एक कविता। पहला मुक्तक इस प्रकार है—

भगवान शिव के सिर चढ़ा मैं काना बेर हूँ,
मंदिर के द्वार पर पड़ा कूड़े का ढेर हूँ।
मैं दुर्गुणों को साथ ले धरती पै आ गया,
मैं आरती के थाल में चिड़िया की छेर हूँ।"

"वाह वाह ! दीनता की दौड़ में भक्तिकाल को पीछे छोड़ दिया। तुलसीदास को टँगड़ी मार दी, सूरदास को धक्का देकर खड्ड में गिरा दिया। वाह, दूसरा कहिये।"

"बस निकल गई दौड़ लगाता ही रह गया,
तकदीर अपनी ठोक बजाता ही रह गया।
उनको कोई गुलाब दे बहका के ले उड़ा,
मैं उनको रोज गोभी खिलाता ही रह गया।"

"हाय ! हाय !! दुर्भाग्य और मूर्खता का अद्भुत सामंजस्य है। कहाँ दिखावटी गुलाब कहाँ उपयोगी गोभी। स्कूटर पकड़ कर पीछा नहीं किया भाई जान !"

अब कवि नं० १२ ने अपनी 'अत्र कुशलं तत्रास्तु' कविता आरम्भ की—

अत्र कुशलं तत्रास्तु
आगे समाचार यह है कि
हम सब कुशल से हैं
और आपकी कुशलता का
श्री गंगा जी से नेक चाहते रहते हैं।

आगे यहाँ पर
लल्ला को जिगर है,
अम्माँ को बुखार

रात वर्षा में गिरी
कोठे की दीवार;
श्रीमती जी दब गईं, कृपया !
किसी तरह बच गईं, भेजो कुछ रुपया।

तुम भी लिखो,
उषा की जो टाँग टूटी, क्या हुआ ?
सुना है फूफा मर गये, विधवा हुईं बुआ ?
मकान के मुकद्दमे का क्या रहा ?
रोको इसे, सुनरा वकील बहका रहा।

फिर भी किसी बात की,
चिन्ता न करना तुम
बुरे वक्त से न डरना तुम;
ये भी दिन जायेंगे,
भले दिन आयेंगे।

माँ जी को चरण-स्पर्श !
भाभी को प्रणाम
हो, तो तुरन्त लिखो
मेरे योग्य काम।
भवदीय आपकाः—
मंसाराम।"

"रूढ़ि का कैसा आलीशान मजाक उड़ाया गया है। दोनों हो ओर जैसी कुशलता एवं प्रसन्नता है, वैसी सिवाये इनके और किसी के न हो, वाह !"

तालियाँ बजीं और बन्द होगईं।

कवि नं० १३ ने आरंभ किया. "मेरी कविता का शीर्षक है चूहा बिल्ली कुत्ता कविता यों है

चाँद
झाँका
अट्टे पर···

म्याऊँ···
म्याऊँ···
मि
या
ऊँ···ऊँ···ऊँ···

भों···
भों···
भूँ···ऊँ···ऊँ···

चाँद
झाँका
अट्टे पर··· ।

कविता समाप्त हुई कि हाल में म्याऊँ और भों भों भूँ के स्वर गूँजने लगे। लगा कि नगर भर के कुत्ते बिल्लियों का सहगान हो रहा है।

हम कविता की उपयोगिता पर सोच रहे थे। निशा-चित्र था या पशु-वर्णन। कुछ भी हो, कविता उत्कृष्ट कोटि की थी। बिम्ब और क्षण का अस्तित्व साकार था। अट्टे पर झाँकता चाँद चूहे सा लगेगा ही, तब बिल्ली भी आयेगी और कुत्ता भी भौंकेगा। डर कर बिल्ली भागेगी ही और चाँद अट्टे पर पुनः चूहे सा झाँकेगा। इसी विचार में डूबे थे कि शोर मच गया, "दिखाई नहीं देता, दिखाई नहीं देता।"

पता लगा कि कवि नं० १४ की घोषणा हो चुकी थी। उन्होंने कहा कुछ भी नहीं। ब्लैक बोर्ड पर कुछ लिख दिया था। यही वह कविता थी जिसे वे सुनाने आये थे बार बार विनय

रने पर भी कवि उसे सुना नहीं सके। हमने उस कविता को
नेट किया—

शीर्षक—व्यर्थ एवं निरर्थक

?

!!,…—…—

!!!—; रुक रुक

च

छ्च छ्च छ्च

ट

ठ्ट ठ्ट ठ्ट

त

थ्त थ्त थ्त

प

फप फप फप

य

यं यं यं

अ—

अः

, ; : :—' ' " "( ) ।

!

?

इसमें किसी को क्या कहना था। हमने स्वयं सरस्वती की वंदना कर मुँह खोलना चाहा, पर खुला ही नहीं। एक बार दोनों हाथों से कोशिश कर खोल भी लिया तो खुला का खुला रह गया।

हंगामा बन्द नहीं हुआ। दर्शक और श्रोता पेट पर हाथ फेरते भाग छूटे : भोजन का समय हो चुका था। सभापति श्री विनगेथ जी की रचनायें सुनने का किसी में धैर्य न था।

कवि-सम्मेलन समाप्त घोषित करना पड़ा। सहसा हमसे संयोजक जी टकरागये, "कैसा रहा"

"बहुत अच्छा। कई नये प्रयोग रहे। अन्तिम तो पराकाष्ठा का था। हाथों से सुनाया और आँखों से सुना। लेकिन रात में यह प्रयोग नहीं हो सकता"

"क्यों ? क्या बल्वों से शुभागमन या स्वागतम नहीं लिखा जाता। इसे छोड़ो, ये बताओ प्रयोगवादी रचनाओं को समझे कि नहीं। रुक क्यों गये, स्पष्ट अभिमत दो। प्रयोगवादी कविताओं को मूर्ख ही नहीं समझ पाते। अब बताओ समझे कि नहीं।"

"वाह ! आपने तो एक सैकिन्ड में सारी कविताएँ समझादीं. सभी सुन्दर थीं" हमारे मुख से डाट सी निकल गई।

हम भवन के द्वार से बाहर आये तो एक प्रौढ़ सज्जन किसी युवक से वार्ता कर रहे थे—

"जब मैं छोटा था बेटा, तो लंगड़ी भिन्न नहीं समझ सका।"

"जी, पिता जी।"

"और जब बड़ा हुआ तो तेरी मां को नही समझ पाया।"

"जी, पिता जी।"

"और आज जब मैं प्रयोगवादी कविता का अधिकारी समालोचक हूँ तो भी इस प्रयोगवादी कविता को नही समझ पाता।"

"जी, पिता जी"

"अबे 'जी, पिता जी' क्या करता है। फिर तुम प्रोफेसर लोग जो मेरे निबंधों को ही पढ़कर लड़कों को बहकाते हो, इस कविता को क्या समझते होगे।"



दो मिनट का मौन

शोक प्रस्ताव, एक आधुनिक कला

महाप्राण निराला को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिये जुड़ी सभा में सम्मिलित हुआ तो किसी अजनबी ने पूछा, "आजु ाहू की लगन आवेगी ?"

इसमें शक नहीं कि सभी सुन्दर और साफ वस्त्रों से सज्जित ड्रेस्ड) थे। बाल सँवारे हुये और शेव बनी हुई। किसी के पर पान-पराग था तो किसी के मुख में इलायची। कोई ट का धुआँ ही डिजाइन से छोड़ रहा था। गरज यह कि ीति, सिनेमा, चुटकुले, खिलखिलाहट आदि जलपान-गोष्ठी ीं कार्यक्रम सरलता से चालू थे और सभापति अकेले दुखी

होने का दुख कर रहे थे । हँसते हुये लोग बारी बारी से शोकाकुल हो जाते थे। अपने ढंग से या घिसे पिटे शब्दों में निराला को महान कवि या दिग्गज लेखक सिद्ध करते और अपनी जगह पर आकर मुस्कराने लगते।

अन्त में शोक-प्रस्ताव पढ़ा गया और दो मिनट का मौन रखा गया। आधे व्यक्ति अपनी घड़ी दिखाने और अधिक समय तक चुप न रहने के लिये अपनी-अपनी घड़ी देखते रहे। बिजली की फुर्ती से लोग एक साथ दुखी हुये और उसी अद्भुत एकता के साथ दुख से मुक्ति पा गये अर्थात् सुखी हो गये।

इस दो मिनट के मौन के बाद फिर वही स्थिति कि 'आजु का काहू की लगन आवेगी ?'

सब कुछ जानते हुए भी मैंने एक कवि से पूछा, "क्या ये लोग वास्तव में दुखी हैं ?"

"भाई, इस समय तो नहीं जान पड़ते किन्तु जब टैरीलीन की कमीज पहनी होगी तो अवश्य धाड़ मार रो पड़े होंगे, शेव करते समय या बाल काढ़ते वक्त अवश्य बेहोश होते होते बचे होंगे या पान खाते समय छाती अवश्य पीटली होगी, या संभव है अब खाना पीना छोड़ दें" उन्होंने उत्तर दिया।

मैं बीसवीं सदी के दर्शन को समझ गया। पहले लोग दुखी होकर तुरन्त मर जाते थे, यह उनकी कायरता थी। आज का व्यक्ति हँसता है और दुखी होने के लिये जीवित रहता है। यह बड़े जीवट का काम है जो पहले के लोगों के लिये असंभव था।

अतएव किसी भी शोक प्रस्ताव को प्रसव करने से पूर्व शोक-सभा का किसी भवन में फर्श-शायी होना तथा श्रद्धांजलि-वेदना का उमड़ना आवश्यक है। यह दूसरी बात है कि वेदना होती बिल्कुल नहीं, वरन् अभिनीत की जाती है। शोक-सभा में लगभग प्रत्येक सदस्य अशोक-मन से सम्मिलित होता है, और बेमन से दुखी होने का नाटक करता है कभी कभी यह अशोक-मन श्रद्धांजलि देते

समय भी स्पष्ट हो जाता है। होता यह है कि कभी-कभी कोई सार्वजनिक विभूति लुप्त होती है तो सभी राजनीतिक पार्टियां एक साथ शोक सभा का आयोजन करती हैं। तभी कोई नालायक प्रतिनिधि कह उठता है, "मेरा परम सौभाग्य है कि अमुक दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि समर्पित करने का स्वर्णिम अवसर मिल रहा है।"

शोक-सभा की प्रामाणिक पहचान यह है कि अनजान व्यक्ति उसे कोई जलसा समझता है और प्रसाद लेने को ठहर जाता है। क्योंकि शोक-सभा का शोक से उसी प्रकार सम्बन्ध नहीं है जिस प्रकार भीमसेनी सुरमा का वीर भीमसेन से कोई सम्बन्ध नहीं है।

शोक-प्रस्ताव एक आधुनिक कला है, फिर भी इसके पेशकार अभिनन्दन-पत्र लिखने वालों की भाँति खान्दानी होते हैं। वे इस कला के प्रत्येक पहलू से परिचित होते हैं। ऐसे लोगों का सम्बन्ध चाहे दिवंगत आत्मा से न हो किन्तु शोक-सभा में इनका बुलाया जाना अनिवार्य होता है। यह बात दूसरी है कि मरे व्यक्ति के परिवार से कुछ लाभ की आशा हो और उत्तराधिकारी शोक-सभा में शामिल हो तो ऐसे व्यक्ति अनाथ हो जाने का अभिनय करते हैं, हर प्रकार का होश खो बैठते हैं किन्तु शोक-प्रस्ताव लिखाने का हमेशा होश रहता है। कभी-कभी तो शोक-प्रस्ताव लिखाने की होड़ मच जाती है, मानो शोक-प्रस्ताव लिखाना शोक का मापदण्ड हो।

कुछ तो बड़े परिश्रम से तैयार करते हैं बल्कि बीमार के मरने से पूर्व ही शब्द संजोना आरम्भ कर देते हैं और दूसरों से प्रशंसा की आशा में मन ही मन फूल उठते हैं, "कितना सुन्दर शोक प्रस्ताव लिखा है मैंने।"

जिस शोक सभा में ये खान्दानी लेखक नहीं होते उस सभा में किसी विद्वान के ऊपर यह भार डाल दिया जाता है, जो शोक-प्रस्ताव को उसी समय तैयार करता है।

सफल श्रद्धांजलि वह होती है जिसमें मृतात्मा से अपने मधुर सबंधो का स्मरण किया जाये चाहे दिवगत से परिचय न हो

या स्वयं ही विष देने के फेर में रहते हों) और सफल शोक-प्रस्ताव वह है जिसमें दिवंगत की आत्मा में अवगुणों का निर्मूलन कर, जितने भी गुणों की कल्पना की जा सके, स्थापित किये जायें (भारतीय संस्कृति के नियमानुसार मरते ही अवगुण गुणों में बदल जाते हैं)। शोक-सभा का यह स्वाभाविक सिद्धान्त होता है कि मृतात्मा के गुणों के विषय में उस समय न कोई तर्क किया जा सकता है और न शंका ही।

[नोट—प्रायः लोग अपनी अल्प बुद्धि और परम्परा के कारण श्रद्धाँजलि और शोक-प्रस्ताव में कोई अन्तर नहीं करते और दोनों में गुण-वर्णन को महत्व देते हैं। जब कि श्रद्धाँजलि में व्यक्तिगत संबंध प्रमुख होने चाहिये और शोक-प्रस्ताव में गुण]

शोक-प्रस्ताव का मैटर दिवंगत के प्रकार से प्रभावित होता है। छात्र, नेता, साहित्यिक, समाज सेवी, वकील, या डाक्टर के विभिन्न शोक प्रस्तावों का मैटर भिन्न भिन्न होगा। यों शोक-प्रस्ताव का संयोजन दिवंगत आत्मा और लेखक की प्रतिभा पर निर्भर करता है। यहाँ हम नमूने के तौर पर साधारण शोक-प्रस्ताव लिख देते हैं—

शोक-प्रस्ताव

आर्य-भवन में जन-साहित्य-गोष्ठी की यह शोक-सभा, श्री मुक्तेश्वर शर्मा के सभापतित्व में, श्री भोलानाथ 'मयंक' के असामयिक निधन पर हार्दिक शोक प्रकट करती है और परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करती है कि दिवंगत आत्मा को शान्ति तथा शोक-सन्तप्त परिवार को धैर्य प्रदान करे।

यह भी निर्णय हुआ कि इस प्रस्ताव की प्रतिलिपि मयंक जी के सुपुत्र श्री हरिभजन शर्मा को तथा स्थानीय दैनिक पत्र 'प्रकाश' में प्रकाशनार्थ भेजदी जावे।

ज्ञानेशचन्द्र वर्मा
मंत्री
१ ४ ६३

संक्षेप में शोक-प्रस्ताव लिखने के डेढ़ नियम इस प्रकार हैं—

१—दिवंगत यदि नगर-प्रसिद्ध है तो प्रान्त का, प्रान्त का है तो देश का, यदि देश प्रसिद्ध है तो विश्व-विख्यात बताना। यदि कतई प्रसिद्ध नहीं है तो प्रसिद्ध मात्र लिखना। उमर कम हो तो 'होनहार' बताना। कम से कम लोकप्रिय अवश्य लिखना चाहिये।

१¼—मृतक को अनिवार्य रूप से किसी न किसी क्षेत्र में प्रतिभा संपन्न कहना। यदि लेखक हो तो चतुर्मुखी प्रतिभा का कहना। यदि किसी प्रकार का भी गुण न हो तो मिलनसार, सामाजिक, सभ्य, संस्कृत, सब के काम आने वाला बताना। 'कर्मठ कार्यकर्त्ता' से भी काम बखूबी चल जाता है।

१½—मृत्यु हमेशा असामयिक नहीं तो आकस्मिक अवश्य होती है। शोक सदा हार्दिक होता है।

एकाधिक लोगों का शोक प्रस्ताव तैयार करना हो तो नामों को क्रमशः लिख देने और कुछ एक वचन शब्दों को बहुवचन करना ही पर्याप्त होता है। नहीं तो सभी के गुणों को नाम ले लेकर एक ही स्थान पर लिखा जाना चाहिये।

शोक-प्रस्ताव में स्थायी भाव की तरह समाये रहने वाले कुछ वाक्य इस प्रकार हैं—

१—आगामी अनेक वर्षों में यह कमी दूर नहीं हो सकती।

२—देश की अपूर्णनीय क्षति हुई है।

३—कमी अखरे बिना नहीं रहेगी।

४—बार बार याद आया करेंगे।

५—उनके अधूरे काम को पूरा करना या जारी रखना ही उनका सच्चा स्मारक होगा।

६—उनके पद-चिन्हों पर चलना ही हमारा कर्तव्य है।

७—उनकी जलायी ज्योति हमारा मार्ग-प्रदर्शन करती रहेगी।

८—हमें एक आदर्श प्रदान कर गये हैं।

९—देश की ही नहीं विश्व की विभूति थे।

१०—सदियों में ऐसा व्यक्तित्व जन्म लेता है।

११—संकट की घड़ी में साहस और बल प्रदान किया।

१२—आधुनिक भारत के निर्माताओं में से एक थे।

१३—भारतीय संस्कृति के प्रतीक थे।

१४—अजातशत्रु थे।

१५—वज्र से कठोर कुसुम से कोमल थे। एवं

१६—प्रेरणा के स्रोत थे आदि-आदि।

चाहे किसी ने आत्म-हत्या ही क्यों न की हो या उसे सारे परिवार ने मिलकर जहर ही क्यों न दिया हो, ऐसी घटनाओं से शोक प्रस्ताव का कोई संबंध नहीं होता। वह तो मृतक के परिवार को शोक-ग्रस्त ही मानता है। नास्तिक भी शोक-प्रस्ताव में प्रार्थना करने का अभिनय करता है।

× × × ×

वास्तव में शोक-प्रस्ताव से किसी की भी दिनचर्या में तनिक भी बाधा नहीं आती। जैसे आप भोजन कर रहे हैं और आपके मित्र आते हैं। आप एक बार 'आओ भाई, भोजन करलो' कह पुनः पूर्व क्रम से लग जाते हैं। आप भी जानते हैं कि मित्र नहीं खायेंगे और आपके मित्र भी जानते हैं कि आप खिलाने को नहीं कह रहे। इसी प्रकार शोक प्रस्ताव भी एक शिष्टाचार बन कर रह गया है।

शोक-प्रस्ताव मुस्कराते हुये, हँसते हुये और यदि अन्य लोग सहमत हों तो गुनगुनाते या गाते हुये भी लिखा जा सकता है। जिस प्रकार कमल की नाल मात्र कीचड़ में होती है वैसे ही शोक-प्रस्ताव की स्याही ही किसी सदस्य के पैन की होती है, शेष शोक-प्रस्ताव का लेखक या प्रस्ताव करने वालों (शोक प्रस्ताव सदा सर्व-सम्मत से पास होता है) से कोई सम्बन्ध नहीं होता।

दो मिनट का मौन भी, किसी भी घड़ी के अनुसार, १३/४ मिनट से कभी भी आगे नहीं जाता। सभापति की शिक्षा ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है समय कम होता जाता है। प्रार्थना कोई भी नहीं करता चाहे आँखें खुली हों या बन्द। इस बीच प्रत्येक सदस्य सोचता है कि कोई और अंगड़ाई ले रहा हो तो मैं जँभाई ले लूँ। यदि यह मौन लेटकर रखे जाने की प्रथा होती तो सदस्यों को सुविधा भी होती (खराब होने के भय से कपड़े भी कुछ घटिया पहने जाते जिससे दुखी होने में स्वाभाविकता आती) और समय भी पुनः खड़े होने तक शायद दो मिनट से अधिक लगता।

शोक-प्रस्ताव के शरीर को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। शोक-प्रस्ताव के प्रथम भाग में स्थान, सभापति, प्रसिद्ध उपस्थिति या संस्थाओं का उल्लेख रहता है। द्वितीय भाग में, जो सर्वाधिक महत्व पूर्ण होता है, दिवंगत से सम्बद्ध वर्णन होता है। तृतीय भाग में एक अनिवार्य वाक्य, 'हम परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि दिवंगत आत्मा को शान्ति एवं शोक-सन्तप्त परिवार को धैर्य प्रदान करे'। फिर प्रस्ताव की प्रतिलिपि उत्तराधिकारी, निकटतम संबंधी, प्रेस आदि को भेजी जावे, इसका संकेत होता है। अंत में संस्थाओं के मंत्री एवं अध्यक्षों या संयोजकों के दिनांक सहित हस्ताक्षर होते हैं।

शोक-प्रस्ताव का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग (द्वितीय) दिवंगत और लेखक की प्रतिभा पर निर्भर करता है। यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि शोक-प्रस्तावान्तर्गत गुणोल्लेख से वास्तविकता का कोई संबंध नहीं होता। जैसे उद्दंड, निरन्तर अनुत्तीर्ण एवं नगण्य छात्र को भी शोक-प्रस्ताव में विनयशील, मेधावी, कालेज का सर्वश्रेष्ठ छात्र लिखा जायेगा। सुविधा के लिये, दिवंगत आत्मा की प्रकार क्रम से, लिखे जाने वाले गुणों के आधार, दिये जाते हैं।

साधारण आदमी—के लिये शोक-प्रस्ताव पास ही कौन करता है? प्राय कई लोगों का शोक प्रस्ताव सामूहिक

ही लिखा जाता है। फिर भी अगर अकेले के लिये आवश्यकत पड़ जाये तो गुणों के उल्लेख की आवश्यकता नहीं होती। केवल संबंध-संकेत ही पर्याप्त होता है। जैसे 'हमारी संस्था के सक्रिय सदस्य थे'।

छात्र—विनयशील, मेधावी, कालेज का सर्वश्रेष्ठ छात्र देश की होनहार प्रतिभा का दुखद अन्त !

अध्यापक—विद्यालय का योग्यतम एवं सर्वाधिक लोकप्रिय अध्यापक। छात्रों का दुर्भाग्य !

वकील—सदा सत्यवक्ता। सत्यनारायण-कथा-प्रेमी।

डाक्टर—गरीबों से फीस न लेने वाले। एक बार मुर्दे मे भी जान डाल देते थे। शरीर को चीरफाड़ कर पुनः सी देने में कमाल हासिल।

हकीम या वैद्य—डाक्टर से दूर न होने वाले रोग को फूंक मात्र से मार भगाने वाले। डोरा बाँध कर नब्ज देखने के विशेषज्ञ।

सेठ—महादानी। अनेक संस्थाओं के संरक्षक। सर्वहारा वर्ग के सर्वस्व।

धार्मिक महन्त या पुजारी—शास्त्रों के परम ज्ञानी। ईश्वर के अनन्य भक्त और साक्षात दर्शक। आशीर्वाद में चमत्कारपूर्ण शक्ति के एकमात्र स्वामी।

मंत्री—राष्ट्र के कर्णधार। देश का भविष्य खतरे में।

कवि—किसी वाद या युग के सर्वश्रेष्ठ कवि। किसी धारा के प्रवर्तक। प्रसाद, पन्त या निराला के संक्षिप्त संस्करण (कवयित्री हुई तो छोटी महादेवी या सुभद्राकुमारी चौहान)।

कथाकार—प्रेमचन्द के उत्तराधिकारी या प्रेमचन्द, प्रसाद और शरतचन्द्र के सम्मिश्रण।

उपन्यासकार—प्रेमचन्द को पीछे छोड़ दिया। आँचलिक उपन्यासों के प्रथम प्रामाणिक प्रणेता अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति

अनुवादक—मूलकवि के अवतार।

साहित्यकार—सभी साहित्यिक हलचलों के केन्द्र। तरुणों के मार्गदर्शक।

संपादक—आदर्श पत्रकार। लेखक-निर्माता।

आलोचक—हंस के समान नीर-क्षीर विवेकी। अनेक शोध प्रबन्धों के निर्देशक। किसी वाद के प्रमुख व्याख्याता।

इनके अतिरिक्त भी वास्तुकार, मूर्तिकार, चित्रकार, संगीतकार आदि अनेक प्रकार की आत्मा हो सकती है। किन्तु अल्प बुद्धि वाला भी उपर्युक्त आत्मा-भेद के सहारे किसी भी आत्मा के गुण सहज ही लिख सकता है।

शोक-प्रस्ताव-लेखक को अधिक न भटकना पड़े, अतः शोक-प्रस्ताव में प्रयोग आने वाली शब्दावली भी संक्षिप्त रूप से दी जाती है:—

अ—अकथ, अकृत्रिम, अक्षुण्ण, अगम्य, अगाध, अग्रज, अग्रदूत, अग्रणी, अचानक, अजातशत्रु, अट्टहास, अडिग, अथक, अद्भुत, अद्वितीय, अधिकारी, अधीर, अध्यक्ष, अंतःकरण, अन्तरात्मा, अनाथ, अनिवर्चनीय, अनुयायी, अनुरूप, अन्यतम, अपूर्णनीय, अप्रतिम, अभिराम, अभीष्ट, अभूतपूर्व, अमर, अमूल्य, अमोध, अयाचक, अयाचित, अल्प, अवधि, अवरोध, अवैतनिक, असामयिक, असूर्यम्पश्या, अहिंसा, अहर्निशि।

आ—आकस्मिक, आकाश, आकाशवाणी, आजन्म, आज्ञाकारी, आडम्बर, आत्मा, आदर्श, आद्योपान्त, आधार, आधुनिक, आप्तकाम, आभारी, आमरण, आय, आयु, आराधक, आशाजनक, आशीर्वाद, आशुकवि, आश्चर्य-जनक, आस्तिक।

इ—इच्छा, इति, इन्दु, इष्ट।

ई—ईंट, ईश्वर।

उ—उऋण, उग्र, उचित, उच्चतम उच्छिष्ठ, उत्कट, उत्कर्ष, उत्तम, उत्पन्न, उत्सव, उत्साही, उदात्त, उदाहरण, उदीयमान,

उद्घाटन, उद्दाम, उद्देश्य, उद्भट, उद्यत, उद्यमी, उप, उपदेशक, उपाधिधारी, उपादेय, उल्लेखनीय।

ऊ—ऊँचा, ऊँट।

ऋ—ऋग्वेद, ऋण, ऋषि।

ए—एकता, एकाग्र, एकान्त, एकत्र, एकाधिकार, एकमात्र।

ऐ—ऐतिहासिक, ऐश्वर्य, ऐहिक।

ओ—ओजस्वी, ओफ, ओह।

औ—औघड़, औचित्य; औढर, औदार्य, औपचारिक, औलाद, औषधि।

क—कंचन, कंठस्थ, कंदमूल, कचहरी, कच्चा चिट्ठा, कदम, कथन, कनिष्ठ, कनकौआ, कमल, करुणा, कर्णधार, कर्तव्य-निष्ठ, कर्मवीर, कलात्मक, कल्पतरु, कार्यकर्ता, कीर्तिस्तम्भ, कुलीन, कुसुम, कोमल, क्षति।

ख—खजाना, खमदम, खरतल, खरे, खिदमतगार, खेवनहार।

ग—गंगाजल, गऊ, गगन, गर्वीला, गवर्नर, गुणी, गार्हस्थ्य, गर्भ, गर्म, गुरु-घंटाल, गोपनीय।

घ—घनिष्ठ।

च—चयनकर्ता, चन्द्रमा, चरण-चिन्ह, चिन्तनशील, चिरनिद्रा, चिर-स्मरणीय, चुनौती, चूड़ान्त, चूड़ामणि, चितेरा, चित्रकार, चिरंतन, चिरंजीव, चिरकाल।

छ—छटांक, छिद्रान्वेषण, छिः, छुआछूत।

ज—जगद्गुरु, जनक, जन्मसिद्ध, जितेन्द्रिय, जीवन-वृत्त, ज्योतिर्मय, ज्वाला, ज्ञानी।

झ—झंझट, झख।

ठ—ठहाके, ठीक।

त—तगड़ा, तत्वज्ञानी, तपस्वी, तम, तरणी, तरुण।

द—दक्ष, दत्तक, दम्पति, दयालु, दर्शनीय, दहेज, दानवीर, दार्शनिक, दिग्गज दिवंगत, दीर्घ, दुर्घटना, दुर्भाग्य, दुहिता, दूरदर्शी-दृष्टान्त, दृष्टिकोण दृष्टिगोचर, देशरत्न देहावसान।

ध—धता, धनवान, धन्यवाद, धर्मात्मा, धर्मशाला।

न—नम्र, नष्ट, नास्तिक, निरंकुश, निरत, निर्भय, निर्दोष, निर्वाण, निवारण, निष्काम, निष्पक्ष, निस्पृह, नीड़, नारी।

प—पतवार, पद्म, पथिक, पथप्रदर्शक, प्रकाशस्तम्भ, प्रकृति, प्रख्यात, प्रणीत, प्रतिष्ठित, प्रतिनिधि, प्रतिभा, प्रतिमा, प्रधान, प्रज्वलित, प्रसिद्ध, प्रातः स्मरणीय, प्रेमी।

ब—बलवान, बलिदान, बुद्धिमान, ब्रह्मचारी।

भ—भगत, भजनानन्दी, भव्य, भारत, भावात्मक, भूतपूर्व, भूषण।

म—मंत्री, मंजिल, महा, महान, महिषी, माँ, मितभाषी, मिष्ठभाषी, मिलनसार, मूर्धन्य, मुख्य, मृत्युंजय।

य—येनकेनप्रकारेण।

र—रंगमंच, रचनात्मक, रत्न, रागात्मक, राष्ट्रपति, रिश्वत।

ल—लक्ष्य, लखपती, लब्धप्रतिष्ठ, लोकसेवक।

व—वज्रपात, वन्दनीय, विदुषी, विद्वान, विभूषण।

श—शत, शरद, शतावधान, शताब्दी, शरीरान्त, शान्ति-परायण, शास्त्रज्ञ, शाश्वत, शिलान्यास, शिरोमणि, शुभचिन्तक, शोक, श्रद्धा, श्रद्धेय, श्री, श्रीसम्पन्न।

स—संघर्ष-प्रिय, संचालक, संपादक-प्रवर, संयोजक, संवेदना, संसार, संस्थापक, सभा, सभापति, सभासद, समाजसेवी, समन्वय, सम्प्रति, सरल, सर्जनहार, सर्वसाधारण, सर्वश्रेष्ठ, सर्वस्व, सहयोगी, सहर्ष, सहानुभूति, सहृदय, साधु, साहित्यकार, सुकुमार, सुधारक, सुरक्षा, स्रष्टा, स्पष्टवक्ता, स्वभाव, स्वनामधन्य, स्वर्गीय, स्वाभिमान सेनानी सौ

छपते-छपते—नवीनतम (लेटेस्ट) प्रथा के अनुसार शोक-प्रस्ताव के लिये शोक-सभा आवश्यक नहीं रही है। संस्थाओं के क्लर्क शोक प्रस्तावों की फाइल निकालकर शोक-प्रस्ताव तैयार कर लेते हैं, फिर मंत्रियों, प्रबन्धकों या संयोजकों के हस्ताक्षर कराकर संबंधित स्थानों को भेज देते हैं। चतुर क्लर्क हस्ताक्षर भी स्वयं (अधिकारियों के) कर देते हैं। बाद में लापरवाही से सूचना भर दे देते हैं।

—०—



'मेरे किशन भगवान, मुझ द्रोपदी की लाज अब तुम्हारे ही हाथ में है"

विनोदप्रिय मुन्शी तनसुखराय

ाषा-विज्ञानी ताल ठोकते हैं कि वरयात्री का बराती पड़ा कि वह 'यह लाओ' 'वह उठाओ' 'यह तो है नी देर होगई' आदि बराता रहता है, तब मुझे कि भाषा-वैज्ञानिकों के दिमागी टायर की ज्ञान- है असल बात यह है कि गुड़ शक्कर पर मुग्ध

होती है, एक जिनावर होता है, उसे ततैया के नाम से पुकारा जाता है। कारण यह है कि जब वह अतिथि के रूप में किसी को काटता है तो आतिथेय 'ताता थैया' 'ताता थैया' चीखता एक पैर पर नाच उठता है। उस ततैये की एक बहिन होती है, उसे बर्र कहा जाता है। जब बर्र डंक मारती है तो आदमी आँय बाँय शाँय बर्राने (दर्द से बड़बड़ाने) लगता है। जब बर्र दूर ही होती है तभी लोगों को सावधान कर दिया जाता है। उसी प्रकार बरात जब थोड़ी दूर रह जाती है (अड्डे या स्टेशन पर आजाती है) तभी बर्र [बर्र एक बचन नहीं है। टिड्डी आई का कभी यह अर्थ नहीं होता कि एक अदद टिड्डी आरही है] आती मालूम पड़ती है और घराती भी तभी से बर्राने लगता है।

ठा० जगमोहनसिंह की बरात क्या थी, तीन सौ बर्रों का छत्ता था। कन्या वालों की नाक में लम्बी फुरफुरी की भाँति दम कर रखा था। कन्या-पक्ष वाले बेचारे छींकते छींकते बेदम हुये जा रहे थे। निदान भाँग की मांग हुई और पूरी की गई। भाँग का भयंकर अंटा चढ़ाने वालों में थे एक नौसिखिये लाला भजनलाल। उनके पेट में भंग का गोला गया और फूटा, ऊपर से किसी ने पिलादी चरस की सिगरेट। अब हाल यह कि ला० भजनलाल वाल्मीकि की तरह 'मरा' 'मरा' चिल्लाने लगे। मुंशी तनसुखराय से नहीं रहा गया, तड़प ही तो उठे, "अबे, मरा मरा क्या करता है, मरजा। घबराता क्यों है? तीन सौ बराती हैं, तेरे बाप की अर्थी में इतने लोग न गये होंगे।"

इन्हीं मुन्शी तनसुखराय का पूर्वनाम पं० देवराज शर्मा था। मुन्शी जी थे भी सुन्दर, सुडौल, स्वस्थ, लम्बे चौड़े, गौरांग। नाम बदलने की भी एक कहानी है। देवराज के पिता पं० मेघराज की नकली हीरे-जवाहरात की दुकान थी। देवराज ने एम० ए० किया था अतः लड़की वाले देवराज रूपी कनस्तर में कन्या-वोट डालने के लिये अशिक्षित मतदाताओं से टूट पड़े। किन्तु पं० देवराज रीति कालीन कविता के रसिक थे वे प्राय एक दोहा

दुहराया करते थे जिसे पं० मेघराज बड़े ध्यान व प्रेम से सुना करते थे। वह दोहा निम्न था—

कनक छरी सी कामिनी काहे को कटि छीन।
कटि को कंचन काटि करि, कुचन मध्य धरिदीन॥

अतएव, देवराज का विवाह कानपुर के प्रसिद्ध जौहरी पं० देवीप्रसाद की एकमात्र ग्रेजुएट कन्या राकादेवी से तय हो गया। सगाई में जिस समय ५०,००० गिन्नियाँ आईं तो पं० देवराज मन ही मन वही दोहा गुनगुनाने लगे और पं० मेघराज लय के आधार पर ही आँखें बन्द कर झूमने लगे।

जिस समय पं० देवराज दूल्हा बनकर चले तो उन्हें अनुभव हुआ कि वे इन्द्राणी ब्याहने जा रहे हैं, उनका वजन एकाएक बढ़ गया है, छाती चौड़ी होगई है और ढीली शेरवानी कसगई है। किन्तु जब भाँवरों के समय जेवरों से लदे कन्या-रत्न के हाथों को देखा तो उनकी आँखें खुली की खुली रह गईं। दाहिनी ओर कपड़े पहने तारकोल की एक मूर्ति विराजमान थी। उसी से पूछा, "क्या आप बता सकते हैं कि बन्नी का रंग ही काला है या वह काले दस्ताने पहने है"

तारकोल की मूर्ति सजग हुई, "कुँवरसाब, इस घर में भौंरा और भौंरी ही जन्म लेते हैं। मैं राका बिटिया का चाचा हूँ।"

पं० देवराज बेहोश हो गये। तला पोंछकर जूता सुंघाने पर होश आगया।

"क्या बात थी बेटा" पं० मेघराज चिन्तित हो उठे।

"जी कुछ नहीं पिता जी, आँखों के सामने अमावस्या का अंधेरा आगया था और जुगनू दिखाई देने लगे थे" पं० देवराज के मुह से निकला और उन्हे जान पड़ा कि वे सहसा हलके हो

गये हैं, छाती सिकुड़ गई है और कसी बनियान भी ढीली पड़ गई है।

कन्या का हाथ जब पं० देवराज के हाथ पर रखा गया तो चौंककर देवराज ने हाथ खींच लिया।

"यह क्या करते हो, बेटा! राका बहू का हाथ कोई गरम तवा थोड़ा ही है" पं० मेघराज हँसे।

"लेकिन ठंडे तवे से किसी हालत में कम नहीं" कहना चाहकर भी पं० देवराज कह नहीं पाये।

भाँवरें पड़गईं। अवसर मिलते ही पं० देवराज गर्जे, "पिता जी, आपने मेरी श्रद्धा और विश्वास का अनुचित लाभ उठाया।"

"बेटे" पं० मेघराज ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया, "तुम एक दोहा बहुत कहा करते थे। मैं कोई पढ़ालिखा तो हूँ नहीं कि पूरा अर्थ समझता। हाँ, कनक और कंचन समझ में आ जाते थे। वही मैंने किया। फिर भी मुझे दोहे का पूरा अर्थ जानना चाहिये था। गलती हो गई, आइन्दा नहीं करूँगा।"

पं० देवराज ने दोनों हाथों की मुट्ठी इतने जोर से कसी कि बेसन के लड्डू चूर चूर हो गये।

सुहागरात थी। पं० देवराज राका को ताक रहे थे अपलक, कि घुघरू बज उठे, राका ने मिठास भरे स्वर में कहा, "क्या देख रहे हैं आप"

"सुहागरात को"

"मैं समझी बरसात को, बरसात हो रही है न!"

पं० देवराज ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे सोच रहे थे कि अगर एक थप्पड रसीद कर दूँ तो श्रीमती जी रोने चीखने लगेंगी और तब, काला गगन सा मुख बादल से बिखरे बाल,

चीखना और दाँतों का बिजली सा चमकना, साथ में आँसुओं की धारा। यानी एक थप्पड़ में सावन सामने !

किन्तु पं० देवराज ने ऐसा कुछ नहीं किया। उन्होंने राका को हृदय से लगा लिया और प्रेम पूर्वक बोले, "तुम कितनी चोटियाँ करती हो प्रिये।"

"दो, डार्लिंग।"

"क्या तीन नहीं कर सकतीं।"

"क्यों ?"

"तुम्हें, त्रिजटा कहने को जी कर रहा है" पं० देवराज के मुख से धीमे से निकला।

× × × ×

इस घटना के बाद भी जब पड़ौसियों ने देखा कि पं० देवराज का वजन एक मन २५ सेर से दो मन दस सेर हो गया है तो समझ गये कि देवराज सीमन्टेड बेशरम हैं और उनको तनसुखराय पुकारने लगे। मुन्शी नाम तो एक क्षण में पड़ गया था। एक बार मुहल्ले वालों ने एक नाटक किया। तनसुखराय जी ने आग्रह किया कि उन्हें भी कोई पार्ट मिले। हार कर उन्हें मवेशी खाने का मुन्शी बनाया गया। काम इतना ही था कि जब भी इन्स्पेक्टर आये और कड़ककर पूछें कि कौन हो तुम; तो एक वाक्य मात्र कह दें, सर, मवेशी खाने का मुन्शी। किन्तु जब वास्तव में स्टेज पर इन्स्पैक्टर ने प्रश्न किया तो आप हड़बड़ा गये और घबराहट में आपके मुख से, "मुन्शीखाने का मवेशी" निकल गया।

तभी से पं० देवराज शर्मा, मुन्शी तनसुखराय हो गये।

उमर के साथ-साथ अमर बेलि सी विनोदी प्रवृत्ति बढ़ती गई। सच तो यह है कि मुन्शी जी इसी कारण से स्वस्थ रहकर जीवित थे। और अब प्रौढ़ावस्था में, जब बच्चों की संख्या कोशिश करने पर भी रुक नहीं पा रही थी, उनकी विनोदी प्रवृत्ति कार्य व्यस्त रहने पर भी बन्द या मन्द नहीं हुई।

"वकील साहब, आइये। फिर नरक में यह तर माल नहीं मिलेंगे।" मुन्शी जी ने दरवाजे के पास बात करते वकील कुंवर बहादुर को आवाज दी।

वकील कुंवर बहादुर आये तो सही किन्तु अन्य प्रतिष्ठित लोगों के मध्य मुन्शी जी की बात सुन मोमबत्ती होगये, "क्या बाहियात बातें करते हो, मुन्शी जी"

"अच्छा, झूठ बोलने वाला नरक जाता है या नहीं"

"जाता है, फिर"

"और आपकी कमाई भी झूठ पर निर्भर है, कहिये, हाँ" मुन्शी जी मुस्कराये।

वकील साहब झेंपे, "मगर जनाब मैं हर महीने सत्यनारायण की कथा जो कहलवाता हूँ" और गुलाबजामुन वकील साहब के उदरस्थ हो गई।

इस समय तो खैर, वकील कुंवरबहादुर मुंशी जी की आदत से परिचित थे किन्तु जब मुंशी जी का पहला पहला मुकदमा हारे थे तो मुंशी जी ने इनकी ओर रुपये बढ़ाते समय कहा था, "भौंके तो आप भी कुत्ते की तरह खूब मगर आपका विरोधी वकील आप से भी अधिक जोर से भूंका, कहिये हाँ"

वकील साहब को क्रोध तो बहुत आया मगर रुपये अभी मुंशी जी के ही हाथ में थे। वकील साहब हाथ बढ़ाते थे तो मुंशी जी नोटों से सना हाथ पीछे हटा लेते थे। निदान हारकर वकील साहब के मुँह से निकला, "हाँ, मगर मुकदमा हारकर भी आपको मजाक सूझ रहा है, मुंशी जी।"

"कुत्ते की तरह भौंके न।"

"हाँ, भाई, सभी के सामने।"

और नोट वकील साहब के हाथ में आगये।

मुंशी तनसुखराय का सत्संग, पोस्टग्रेजुएट उसखर्ची व्यापारी होने के कारण शिक्षित वर्ग के साथ अधिक होता था

मुन्शी जी भी कुछ अधिक लाभ के कारण पुराने रईसों के स्वभाव के हो चले थे। अतः उनकी बैठक में वकील, प्रोफेसर, डाक्टर, इंजीनियर आदि सभी शामिल रहते थे। सभी को खातिर के साथ मजाक भी परोसते थे। इंजिनियर को चूहों का रिश्तेदार बताते थे तो डाक्टर को मौत का एजेन्ट। एक बार प्रो० वर्मा इंगलिश की हिमायत कर रहे थे, "बिना अंगरेजी के सभी भाव अभिव्यक्त होही नही सकते और आपकी हिन्दी में तो कुछ भी नही है। जो बात अँगरेजी में कही जा सकती है, वह हिन्दी मे आही नहीं सकती।"

हिन्दी के प्रो० गुप्ता कुछ कहने को तिलमिला रहे थे कि मुन्शी तनसुखराय बोल उठे, "और हमारा विचार इससे उल्टा है प्रो० वर्मा, जो बात हिन्दी में कही जा सकती है वह अँगरेजी में आही नहीं सकती। आप चाहें तो मैं हिन्दी के कुछ वाक्य कहूँ, जिन्हें आप अंगरेजी में ट्रान्सलेट करें।"

प्रो० वर्मा का यह लम्बवत अपमान था अतः गरज कर बोले, "लहरें गिनाने से काम नहीं चलेगा, डुबकी लगाइये। मैं अँगरेजी का अपमान बर्दाश्त नहीं कर सकता। आप वाक्य बोलिये।"

मुन्शी जी कंधा उचकाते तपाक से बोले, "मेरा क्या वश जब आप ही अपने अंगरेजी पैरों में हिन्दी का घनकुटा मार रहे हैं। एक क्या, मैं अनेक वाक्य कहूँगा। वाक्य नं० १, सड़क पर जूता धड़ाधड़ चल रहा है।"

प्रो० वर्मा एक सैकिन्ड में असहाय की भाँति ताकने लगे। मुन्शी जी मुस्कराये, "वाक्य नं० २, कलरात सोते में मेरी कम्बख्त गर्दन रह गई और लल्ला की हँसली उतर गई।"

प्रो० वर्मा को ऐसे वाक्यों की आशा न थी। उन्हें आज ही पता लगा कि किसी भाषा की आत्मा दूसरी भाषा में नहीं

बोल सकती। उनके अधर कुछ बोलने को होते मगर बिना एक शब्द बड़बड़ाये यथास्थान सिकुड़ जाते।

"वाक्य नं० ३, इस भैंस को देखिये, कमरे में घुसी तो भड़ड़ भड़ड़, चौके में है तो लदर पदर, बरामदे में खड़े हैं तो पटर पटर, सारा घर बिगाड़ दिया।"

प्रो० वर्मा क्या कहते ?

"होगई बोलती बन्द" मुंशी जी चहके

"यह मेरी इन्सल्ट है" प्रो० वर्मा नाराज होकर खड़े हो गये।

"अजी, यह भी एक वाक्य है, अँगरेजी बनाइये" और मुंशी जी ने एक ठहाका पूरा मुंह फाड़ कर मारा।

अँगरेजी के प्रो० वर्मा बिगड़ कर चले गये तो हिन्दी के प्रोफेसर गुप्ता ने ताली बजाई।

"आप भी गुप्ता जी अपनी हिन्दी की लिपि को ठीक कराइये वर्ना कल प्रो० वर्मा से ताली बजवाऊँगा। देखिये, 'खिसूखी योजना' 'खिमूली योजना' छप जाती है, 'रेवतीशरण', 'खेतीशरण', हो जाते हैं और कम्बख्त 'गधा बल्लभ' 'राधा बल्लभ' बन बैठता है। और सुनिये—

सोच में पन्ना को पन्ना पढ़ गये।
ऐंठ में भन्ना के मन्ना पढ़ गये॥
जब हुई रबड़ी खड़ी, सँभले बहुत,
था लिखा 'खन्ना', 'रवन्ना' पढ़ गये॥

"इसमें से अधिकांश मुद्राराक्षस की महरबानियाँ हैं। फिर भी मुंशी जी हम मानते हैं कि हिन्दी में कारखाना, काररवाना हो जाता है और शमा परवाना..........."

"बस बस गुप्ता जी अब बदबू आने लगेगी" मुंशी जी ने कहा और सभी ने पुनः एक जोरदार ठहाका लगाया।

× × ×

मुंशी तनसुखराय छोटी छोटी मुसीबतों से तो विनोद के सहारे ही छुटकारा पा जाते हैं। एक बार आवारा मित्र के साथ नदी किनारे घूम रहे थे कि दो देवियाँ निकलीं। आवारा मित्र ने खान्दानी आदत के अनुसार आवाज कसदी। देवियाँ कुछ अधिक आधुनिका थीं। उन्होंने नई चप्पलों का ख्याल न करते हुये भी उन्हें उतार लिया और चीख पड़ीं, "तुम्हारे बहिनें नहीं है क्या ?"

आवारा मित्र की सिट्टी पिट्टी गुम हो चुकी थी। बात मुशी जी ने सँभाली, "विश्वास कीजिये, आप दोनों मेरी बहिनें हैं।"

अपनी विजय पर मुस्कराती देवियों ने चप्पलें पैरों में डाल लीं। तभी मुंशी जी ने गम्भीर वाणी में सरसता घोली, "किन्तु मेरी बहिनो, इन महाशय से आप क्या कहेंगी" आवारा मित्र की ओर इशारा किया, "ये मेरे जीजा हैं"

आवारा मित्र खिल उठे। देवियाँ झेंपकर आगे बढ़ गईं।

यों मुंशी जी ने विनोद करने में पुरुष और महिलाओं में कभी अन्तर नहीं किया। हाँ, अवसर देखकर भाषा में परिमार्जन अवश्य कर लिया। एक बार कुत्ता-प्रदर्शनी में एक निहायत खूबसूरत पिल्ले पर हाथ रखकर आप चिल्ला उठे, "यह पिल्ला किसका है ?"

"मेरा है" एक सुन्दरी ने सगर्व कहा

"सच सच बताइये"

"बिलकुल सच, मेरा ही है"

"ओह !" मुंशी जी बड़ी संजीदगी के साथ धीमे से बोले, "मै समझा किसी कुतिया का है"

इसी प्रकार एक बार आप अत्यन्त फैशनेबिल फारवर्ड महिलाओं की महफिल में जा फँसे। एक नाजुक मिजाज, बहु-मूल्य वेशभूषा धारिणी कामिनी ने कहा, "यह नारी के प्रति विधाता का अन्याय है कि वह प्रसव भी करती है और पीड़ा भी

सहन करती है। कम से कम ऐसा तो होना ही चाहिये कि प्रसव नारी करे तो पीड़ा पुरुष बर्दाश्त करे"

"हेअर हेअर" महिलाओं नें तालियाँ बजादीं।

मुंशी जी को अजीब घृणा सी हुई। इच्छा हुई कि काँटा छुरी उन देवी जी के मुंह में ठूंस कर चल दें। किन्तु वहाँ बारम्बार पुरुषों को उत्तर देने की चुनौती दी जाने लगी तो मुंशी तनसुखराय खड़े हो गये, "आदरणीय देवियो, विधाता ने जो विधान रचा है, बड़ा सोच समझकर रचा है। ऋग्वेद एक ऐसा प्रथम किन्तु सम्पूर्ण व्यावहारिक कोश है कि प्रत्येक युग के प्रत्येक प्रश्न का उत्तर उसमें मिलेगा। आपके इस प्रश्न को ऋग्वेद के सातवे मण्डल के आठवें अध्याय के नवें सूत्र में पौराणिक कथा के रूप में स्थान मिला है। कथा संक्षेप में इस प्रकार है। एक बार नारी-समाज ने यही शिकायत की कि वे प्रसव के साथ पीड़ा वर्दाश्त करने को तैयार नहीं हैं। उन्होंने अपनी अध्यक्षा के नेतृत्व में एक अर्जी विधाता के सम्मुख पेश की। उसमें अपील की कि आज से प्रसव नारी करे और पीड़ा पुरुष वर्दाश्त करे। बात इतनी समीचीन थी कि विधाता ने तुरन्त 'तथास्तु' कह दिया।

संयोग की बात, नारी-समाज की अध्यक्षा को ही जब सर्वप्रथम प्रसव होने जा रहा था तो नये विधान के अनुसार उन्हें पीड़ा नहीं हो रही थी। उन्होंने मुस्कराते हुये अपनी सेविका को पति के दफ्तर भेजा, "जा देखकर तो आ कि साहब का क्या हाल है।"

सेविका ने पलटकर खबर दी, "मेम साहब, साहब तो आराम से मेज पर पैर पसारे अखबार पढ़ रहे हैं। किन्तु कार का ड्राइवर मछली सा तड़प रहा है।"

मुंशी तनसुखराय ने बात इतनी गंभीरता से कही कि न कोई हँस सका और न कोई क्रोध प्रकट कर सका।

"फिर"

"फिर क्या" मुंशी जी ने कथा समाप्त की "अवसर पाते ही अध्यक्षा विधाता से उनके प्राइवेट कक्ष में मिली विधाता को

विश्वास दिलाया कि नारी-समाज विधाता के पूर्व विधान से सहर्ष सहमत है। बस, तभी से नारी प्रसव के साथ पीड़ा भी बर्दाश्त करती आ रही है।"

सहसा मुंशी जी ने देखा कि पुरुष-वर्ग भी महिला-वर्ग के साथ उन पर बिगड़ रहा है। तब मुंशी जी ने एकदम क्रोध में भर कर कहा, "पहले आप ऋग्वेद पढ़ें फिर मुझ से बात करें।"

बाद में मुंशी जी ने फर्माया, "इतना तो मैं समझता था कि आफीसरों का ये अधिक पढ़ा लिखा वर्ग ऋग्वेद पुराण क्या जाने ? किन्तु मूर्ख स्त्रियों के प्रेमी मर्द इस सीमा तक जनाने हो सकते हैं, ये आज ही जाना। किये हुये अध्ययन को भी ऐश और गर्व में भूल गये हैं, ये लोग।"

खरी बात कहकर भी मुंशी तनसुखराय अपना मनोरंजन कर लेते हैं। पन्नालाल ओवरसियर के बूढ़े बाप मर गये तो मातमपुर्सी में आप गये और उदास पन्ना से छूटते ही बोले, "मिठाई कब खिला रहे हो ?"

अन्य लोग भी थे। पन्ना की आँखों में क्रोध उभर आया, "क्या बदतमीजी है, मुंशी जी।"

मुंशी जी मुँह खोलें कि पन्ना उन्हें दूर एकान्त में खींच ले गया, "यार, मौका तो देखाकर।"

"तो साले नाराज होने की क्या आवश्यकता थी। मैं स्वयं संभाल लेता। मगर तुझ से एक्टिंग नहीं आती। ला कुछ पैसे निकाल, पिपरमिन्ट ला दूँ। आँखों से लगाते रहना। कितना है बैंक में ? बड़ा कंजूस था बुड्ढा" मुंशी जी चहके।

"कुल २५,०००" मुस्करा कर पन्ना ने आँख मारी, "जरा तेरहवीं से निबटने दो, कम्बख्त मुहर्रमी मेहमान विदा हों तो मन की निकालें

मुन्शी जी ने वापस आकर पन्ना के बाप की तारीफों के पुल बाँधने शुरू कर दिये और पन्ना ने रूमाल लगाकर सिसकियाँ भरना आरंभ कर दिया।

लेकिन जिसने मुंशी जी के प्रति अवहेलना दिखाई, उसकी उन्होंने कभी चिन्ता नहीं की और सरे आम नीचा दिखाया। जैसे उनका लंगोटिया मित्र हरीशंकर जर्मनी से पी० एच० डी० करके लौटा तो उसकी शादी एम० ए० उत्तीर्ण सुन्दरी अध्यापिका से हो गई। प्रदर्शिनी के एक समारोह में जब मुन्शी जी से मुलाकात हुई तो हरीशंकर ने मुंशी जी को कोई लिफ्ट नहीं दी। परिणाम यह हुआ कि मुंशी जी ने हरीशंकर को धर पकड़ा, "केवल एक प्रश्न, तुमने उस समय क्या उत्तर दिया था।"

"किस समय"
"अरे भाई उसी समय"
"किस समय मुन्शी जी, जान मत खाओ"
"तो क्या शादी नहीं हुई ?"
"क्यों नहीं हुई"
"फिर क्या सुहागरात नहीं मनी"
"क्यों नहीं मनी" हरीशंकर गर्व से फूल उठे !

मुंशी जी ने वार्ता जारी रखी, "तो क्या आँखें नहीं मिली थीं।"

"क्यों नहीं ?"

'बस तभी की बात है। जब आपकी नव-वधू ने सलज्ज रसभरी अदा से कहा था कि किधर देख रहे हो, जी, तो उस समय आपने क्या उत्तर दिया था।"

हरीशंकर को काटो तो खून नहीं। आस पास जोर का ठहाका पड़ा। तनिक दूर खड़ी श्रीमती हरीशंकर का रक्तवर्ण चेहरा दर्शनीय था यदि हरीशंकर मुंशी तनसुखराय से तगड़े

होते तो वह द्वन्द के लिये अपने पति को उकसाती। दोनों के शरीर को नजर-तुला पर तोल वह दांत पीस कर रह गई।

बात यह थी कि डा० हरीशंकर भेंड़े थे। अतएव वे किधर देख रहे हैं ये सिवाए उनके और कोई नहीं जान सकता था।

जब से मुंशी तनसुखराय का विवाह भयंकर दहेज लेकर किया गया था, तब से मुंशी जी समाज-सुधारों के प्रबल समर्थक थे। शिक्षा, सौन्दर्य और शरीर की दृष्टि से बेमेल विवाह के सख्त विरोधी थे। जहाँ उनकी चलती थी, वहाँ यथाशक्ति अपने पास से रुपया लगाकर भी बेमेल विवाहों को रोकते थे। एक बार उन्हें पता लगा कि उनके गाँव में एक पन्द्रह वर्षीय कन्या से पचपन साला वृद्ध विवाह करने जा रहा है। मुंशी जी ने वृद्ध को बहुत समझाया पर वह कामदेव का भक्त न माना। कन्या-जनक ने स्पष्ट कह दिया कि ४००० के ऋण के कारण ही वह ऐसा जघन्य पाप करने जा रहा है। मुन्शी जी ने कन्या-जनक को ४००० दिखाकर समझा दिया और अपने मजाक को मूर्तरूप देना आरंभ किया। कन्या-पक्ष का सारा व्यय भी वह बुड्ढा ही उठा रहा था।

मुंशी तनसुखराय ने नन्हे हिजड़े को बुलवाया और १०० रुपये बतौर इनाम दे कार्य-क्रम समझा दिया।

भाँवरें पड़ गईं। मुंशी जी ने विदा के समय नन्हे को रोने नहीं दिया। चलते-चलते किसी प्रकार नन्हे ने कहा, "अये मुंशी जी, रथ में ही वह खूसट मुझ से कोई छेड़ कर बैठा तो?"

"देख बे, नन्हे के बच्चे" मुन्शी जी गर्जे, "तेरे बाप ने भी कभी इतने जेवर देखे हैं जो तू इस समय पहिने है। सौ रुपये मुफ्त नहीं दिये। स्टेशन तक किसी प्रक र संभाल लेना भला

नन्हे शरमा उठा। उसने ताली बजाने को हाथ उठाये तो मुंशी जी ने बड़ी मुश्किल से रोका।

बरात विदा हो गई।

रथ में वृद्ध से नहीं रहा गया। सुन्दर सपनों में बहकर उसने कहा, "जानती हो प्रिये, अब क्या होगा ? द्वार पर तुम्हारा अपूर्व स्वागत होगा, आरती उतारी जावेगी, अर्घ्यदान किया जावेगा, फिर हम दोनों सुहागरात मनायेंगे, फिर हमारे चाँद सा टुकड़ा आयेगा, और तुम्हारी गोद भर जायेगी। मैं मुहल्ले में मिठाई बाँटूँगा। हिजड़े हमारे घर नाचने आयेंगे। जानती हो प्यारी, वे क्या गायेंगे ?"

अब तो नन्हे से जब्त करना मुश्किल हो गया। किसी प्रकार अभी तक नन्हे अपने आप को बोलने से रोक रहा था किन्तु अब उसने दोनों हाथ निकाल ताली बजादी और अपने भ्रांड स्वर में गा उठा, "घूंघर वाले बाल, मोरे लला के, हये घूंघर वाले बाल।"

वृद्ध को शक हो गया और उसने नन्हे का घूंघट हटा दिया। नन्हे रथ से कूद कर भागा। एक हंगामा मच गया। सभी बराती नन्हे को पकड़ने दौड़े। और नन्हे चारों ओर बेतरतीब लम्बी-लम्बी कूद फाँद कर रहा था, "अये मुंशी जी, कहाँ छिप गये। मेरे किशन भगवान, मुझ द्रोपदी की लाज अब तुम्हारे ही हाथ है। ऐ मुंशी जी कहाँ छिप गये।"

और मुंशी तनसुखराय ४००० की थैली थामे, चौड़े में खुले आसमान के नीचे, घरातियों के साथ नन्हे का तमाशा देख रहे थे।

× × × ×

ऐसी बात नहीं है कि मुंशी जी अवसर आने पर अपने परिवार वालों से चूक जायें। मुंशी जी की अपढ़ माँ को भद्दी गाली देने की बुरी आदत थी जिसे मुंशी जी छुड़ाने में सफल

नहीं हो रहे थे। मुंशी जी की माँ पड़ौसी से रंजिश मानती थीं किन्तु मुंशी जी थे कि पड़ौसी से भली प्रकार बोलते चालते थे। और इस बारे में अपनी माँ की नहीं मानते थे। आखिर मुंशी जी की माँ एक दिन गरम हो ही उठीं, "मैं मना करती हूँ तो भी तू उस कम्बख्त से बोले बिना नहीं मानता। क्या तेरा बाप लगता है वह ?"

मुंशी जी ने गंभीर मुद्रा बनाली, "लेकिन माँ, यह तो तुम्हीं बता सकती हो"

बेचारी माँ ने दाँतों तले उँगली दबाकर कान पकड़े और मुंशी तनसुखराय अपनी बाँकी अदा में मुस्करा उठे।

—०—



श्री राम सिगरेट पीते हैं और हनूमान जी चाट उड़ाते हैं ।

आज की रामलीला : मनोरंजन का एक साधन

यास—बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं ।
कबहु न असि रिस कीन्ह गोसाईं ॥
एहि धनु पर ममता केहि हेतू ।
सुनि रिसाइ कह भृगुकुल केतू ॥

लक्ष्मण—हे पिताजी, लड़कपन में बहुत सी धनुहियां तोड़ डालीं किन्तु आपने ऐसा क्रोध कभी नहीं किया। इसी धनुष पर हे गोसाईं, इतनी ममता किस कारण है?

व्यास—यह सुनकर भृगुवंश की ध्वजा स्वरूप परशुराम जी कुपित होकर कहने लगे—

रे नृप बालक काल बस बोलत तुहि न सँभार।
धनुहीं सम त्रिपुरारि धनु विदित सकल संसार॥
सियाबर······

दर्शक—रामचन्द्र की जै।

परशुराम—अरे राजपुत्र! काल के वश होने से तुझे बोलने में कुछ भी होश नहीं है। हे बेटे, सारे संसार में विख्यात शिवजी का यह धनुष क्या धनुही के समान है?

व्यास—लखन कहा हँसि हमरे जाना।
सुनहु देव सब धनुष समाना॥
का छति लाभ जीर्ण धनु तोरे।
देखा राम नयन के भोरे॥

लक्ष्मण—(हँसकर) हे पिताजी! सुनिये, हमारे जान में तो सब धनुष एक से ही हैं। हे देव! पुराने धनुष के तोड़ने से क्या लाभ? श्री रामचन्द्र जी ने तो इसे नवीन के धोखे से देखा था।

व्यास—छुअत टूट रघुपतिहू न दोसू।
मुनि बिनु काज करिअ कत रोसू॥
बोले चितइ परसु की ओरा।
रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा॥

लक्ष्मण—हे पिताजी! फिर यह तो छूते ही टूट गया; इसमें रघुनाथ जी का भी दोष नहीं है। हे मुनि! आप बिना कारण ही किस लिये क्रोध करते हैं?

परशुराम—(अपने परसे की ओर देखकर) हे दुष्ट बेटे, तुमने मेरा स्वभाव नहीं सुना।

व्यास—बालक बोलि बँधहु नहि तोही।
केवल मुनि जड़ जानहि मोही ॥
बाल ब्रह्मचारी अति कोही।
बिस्व बिदित क्षत्रियकुल द्रोही ॥

परशुराम—हे बेटे ! मैं तुझे बालक जानकर नहीं मारता हूँ। अरे, मूर्ख ! क्या तू मुझे निरा मुनि ही समझता है ? हे बेटे ! मैं बाल ब्रह्मचारी और अत्यन्त क्रोधी हूँ। क्षत्रिय कुल का शत्रु तो विश्व भर में विख्यात हूँ।

ऐसी विचित्र परिस्थिति का कारण था परशुराम और लक्ष्मण का वास्तविक जीवन में बाप बेटे होना। असल में धन, साधन, गंभीरता और प्राचीन संस्कृति से गहरा लगाव न होने के कारण तथा किसी न किसी प्रकार परम्परागत लकीर पीटते रहने के कारण आज की रामलीला वास्तविकता से उतनी ही दूर है जितनी दूर ठेकेदार से ईमानदारी, प्रकाशक से लेखक की आर्थिक दृष्टि, छात्र से अनुशासन-मति अध्यापक से अध्ययन प्रवृत्ति या सरकारी कर्मचारी से कार्य-प्रियता रही है। सस्ते मनोरंजन के उद्देश्य के कारण मूंछोंवाली चन्द्रमुखी दिखाई देती है। ऐसी दशा में रामचरित मानस का सन्देश जन-मानस तक कैसे पहुँच सकता है ?

इस शोचनीय दशा के निम्न कारण हैं:—

१—पुरुष पात्रों से नारी का अभिनय—पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित इस युग में भी जब पुरुष नारी का अभिनय करता है तो हँसी के अवसर आ ही जाते हैं। नारी की कोमलता और लज्जा पुरुष में कहाँ ? तनिक कल्पना तो कीजिये कि कैकेयी, कौशल्या, मंथरा, सीता, उर्मिला, तारा, मन्दोदरी आदि का भाव भीना चरित्र कठोर पुरुष कैसे प्रदर्शित कर सकता है ? ऊबड़-खाबड़ चेहरे को भी छोड़दें तो न वह आवाज होती है, न वह

चाल। उर्मिला की आवाज में चर्खा बोलता है तो बन-गमन के समय दुखी सीता के चलने से तख्त हिल जाता है। कैकेयी को घोर क्रोध हुआ तो एक बार बोल उठी, "मैं कुछ नहीं जानता, राम बच्चू को वन जाना ही पड़ेगा।"

मेघनाथ की मृत्यु पर विलाप करने के लिये जैसे ही सुलोचना (जिसकी आँखें सरसों-सी थीं) पर्दे के पास, बाहर आने की दुखी मुद्रा में खड़ी थी, कि किसी प्रकार पर्दे के साथ ही सुलोचना का लहँगा उठगया और लोगों ने देखा कि सुलोचना पहलवान लंगोट कसे हुये हैं। दर्शक की निगाह से यह नक्शा नहीं गया, परिणामतः सुलोचना से कोई सहानुभूति नहीं रह गई। सूर्पनखा तो स्पष्ट ही एक धूर्त-मर्द होता है जो नाक कटने के बाद नारी-दर्शकों को अश्लील भाव प्रदर्शित करता है।

मंच पर ही बाजे और ढोलक वाले बैठते हैं। छोटे-छोटे नारी अभिनय (मन्थरा, शबरी आदि) यह बाजे वाला ही, जो प्रायः नाटक-मंडली का मालिक होता है, सब के सामने एक दुपट्टा सर पर डाल कर कर लेता है। नीचे से पाजामा दिखाई देता है और ऊपर से मूंछें। दर्शक हँस पड़ते हैं तो अजीब प्रकार से कमर लचका कर कहता है, "आप मूँछों पर न जाइये, हमारी नजाकत को देखिये।"

२—**वेश-भूषा और साज-सज्जा**—कहीं-कहीं तो वेश-भूषा का भयंकर अभाव होता है। यदि किनारों पर बेल बूटे वाले चिर परिचित लम्बे कोट को न पहना जाये तो राजा दशरथ भिखारी और रावण कुली मालूम देता है। मुकुट न हों तो सीता आया और राम लक्ष्मण आढ़तिया के कुल दीपक प्रतीत होते हैं।

किन्तु कहीं-कहीं की रामलीला वेशभूषा और साज-सज्जा के कारण ही दूर-दूर तक प्रसिद्ध होती है। किसी अन्य प्रकार के प्रदर्शन से सम्बन्ध नहीं के बराबर होता है। बन्दर और राक्षस रेशमी कपड़ों में चहकते हैं रावण और मेघनाथ ही नही

अक्षय कुमार भी आकर्षक वेश में गरज कर बोलता है। राम लक्ष्मण और सीता बन-गमन के समय भी इतने सज्जित रहते हैं कि प्रसंग न मालुम होने पर प्रतीत हो कि शादी के बाद पिकनिक पर जा रहे हैं।

३—**पात्रों का चयन**—पात्रों का चयन सँभाल कर नहीं होता। कैकेई मंथरा लगती है तो मंथरा कैकेई सी सुन्दर। राम और लक्ष्मण में रंग और कद का कोई भेद नहीं होता। रावण को टी० बी० मालूम देती है और मेघनाथ को टाइफाइड। राम की आवाज फटी है तो भरत की भर्राती है। सुलोचना रोती है तो लगता है कि मेघनाथ दहाड़ रहा है। दशरथ नौजवान लगता है तो परशुराम कचहरी का बूढ़ा अहलमद। कभी-कभी सीता एक शब्द भी नहीं बोल पाती, कारण, वह किटकिन्ना सीखने वाली एक बच्ची होती है।

४—**अभिनय की कमी**—सम्पूर्ण रामलीला में अभिनय पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता। कहीं-कहीं तो पात्र केवल बैठे ही रहते है और व्यास या कथा वाचक ही चौपाई के साथ अर्थ करता चलता है। पात्र केवल टहलने, खड़े होने, झुकने और आशीर्वाद देने का अभिनय कर लेते हैं। प्रायः ऐसा होता है कि पात्र यदि अपना सम्बन्ध समझते हैं तो चौपाई का अर्थ स्वयं बोल देते हैं। ये बोलना मशीन या तोते की भाँति होता है, रस की चिन्ता नहीं की जाती। दर्शक को प्रबुद्ध मान लिया जाता है, जो कथा प्रसंगानुसार साधारणीकरण कर रसानुभूति करता चलता है।

रसाभिनय की सीमाएँ है। वीर-रस में प्रायः भुजा उठाई जाती है, पैर पटका जाता है, या ताल ठोकी जाती है। शृंगार केवल संबोधन (प्रायः प्यारे या प्यारी) में सिमट कर रह जाता है, जो पवित्र कथानक के कारण कभी अश्लील नहीं होता। रौद्र और को कोई पात्र समझता ही नहीं है हा भागने

का अभिनय कर लेते हैं। हास्य, दाँत निकालने, ताली बजाने या हा हा करने से समझ में आजाता है। शोक प्रकट करने में ये माहिर होते हैं। रूमाल आँखों से लगाकर हिचकी लेते हैं और छाती पीट लेते हैं। मंच पर गिरकर पछाड़ भी खा लेते हैं। संबोधन 'हे' से आरंभ करते और वाक्य की क्रिया को लम्बी कर देते हैं। बुरा उसी समय लगता है जब चौपाई पढ़ी जाती है उस बीच दुखी पात्र बाजे ढोलक वालों से हँसकर बात कर लेता है और चौपाई समाप्त होते ही शोक-मग्न हो जाता है।

मरना होता है तो तख्त पर गिर कर मौन धारण कर लिया जाता है। कभी-कभी इस मरने में भी गड़बड़ो हो जाती है। हमारे सामने कुम्भकरण ने गिरते-गिरते कहा, "अबे हंडा हटाओ, मुझे गरमी लग रही है।" या राजा दशरथ ने सुन्दर ढंग से शोक-प्रदर्शन कर प्राण त्याग दिये, दर्शकों में से 'वन्स मोर' की आवाज आई, लीजिये, दशरथ जी उठे, और शोक प्रदर्शन कर इनाम के लालच में पुनः मर गये।

मेघनाथ ने बढ़िया अभिनय कर मृत्यु का वरण कर लिया, किसी ने प्रशंसा में मंच पर एक रुपया फेंका तो मरे मेघनाथ ने हाथ से सरका लिया।

यह तो हमेशा होता है कि मंच पर मरा पात्र पूरा पर्दा गिरने से पूर्व ही उठ पड़ता है और दर्शकों को स्पष्ट दिखाई दे जाता है।

बिना मेकअप के नौजवान ही युवक या वृद्ध का अभिनय करते हैं। यह दर्शक पर निर्भर करता है कि पात्रों की आयु का पता लगाले। अधिक से अधिक दाढ़ी मूँछें ही वृद्धत्व की प्रतीक होती हैं जो नाक कान में उरसी हुई साफ मालूम होती हैं। एक बार किसी पात्र ने गर्व से मूँछ ऐंठकर कुछ कहा तो मूँछ हाथ में आरही

५—पात्रों का वास्तविक जीवन—अभिनय करते समय यदि पात्रों को अपना वास्तविक जीवन याद आजाये तो अजीब मनोरंजन उत्पन्न होता है। कृष्ण लीला में तो हमने इतना ही देखा था कि जब-जब कृष्ण वंशी लेकर कंस पर दौड़ते थे, बसत पहलवान (कंस) उन्हें धक्के देकर दूर फेंक देता था। दर्शक हँसते थे। कृष्ण में थप्पड़ मारने को हुआ तो किसी प्रकार निर्देशक ने रोका और धीमे से कहा, "ये क्या करते हो, पिट जाओ।"

"मैं पिट जाऊँ" बसंत पहलवान ने सहसा गरज कर कहा, "सारा गाँव देख रहा है, सामने ही मिहरिया बैठी है और मैं मातादीन के जरा से छोकरे से पिट जाऊँ।"

किन्तु रामलीला में वास्तविक जीवन और भी अधिक रंग लाता है। परशुराम-लक्ष्मण संवाद आरम्भ में दिया जा चुका है। दूसरा अधिकृत उदाहरण लीजिये। जैसे ही सुग्रीव और बाली में युद्ध आरंभ हुआ, सुग्रीव, "मूलचन्द के बच्चे, आज देखूंगा" कहकर बाली पर टूट पड़ा। बाली किसी प्रकार जान बचाकर दर्शकों की ओर भाग खड़ा हुआ। श्रीराम पेड़ की आड़ में तीर ताने ही रह गये।

बात यह थी कि वास्तविक जीवन में भी सुग्रीव (दयाचन्द) को पत्नी पर पड़ोसी बाली (मूलचन्द) की निगाह थी। अतः संयोग से अवसर आते ही दयाचन्द अपनी पर उतर आया।

६—आधुनिकीकरण—रामलीला में आधुनिक सुविधाओं ने भी पर्याप्त मनोरंजन भर दिया है। असावधानी रंग ले आती है। चश्मा पहने रावण ने विभीषण के लात मारी तो बाटा का जूता निकल पड़ा। अहिरावण ने राम लक्ष्मण को कंधों पर उठाया तो कोट की बाँह सरकने पर कलाई की घड़ी दिखाई देने लगी और फाउन्टेन पेन नीचे आ रहा। सूर्पनखाँ ने रिझाने के लिये "मेरा तन डोले मेरा मन डोले मेरे दिल का गया करार रे कौन बजाये बाँसुरिया गाया तब तो लक्ष्मण जी झूमने लगे, पर जैसे ही गीत

समाप्त हुआ तो सूर्पनखाँ के नाक कान काट लिये गये। राम-युग में कृष्ण-युग का समावेश हो गया।

बिजली चले जाने के कारण दिन के प्रसंग अजीब से लगते हैं। कभी कभी तो वाक्य के बीच में बिजली धोखा देती है। सीता जी ने राम को मृग की ओर संकेत कर कहा, "क्या आप उस स्वर्णमृग को नहीं देख रहे ?"

"हाँ सीते" इसी क्षण बिजली चली गई, विवश हो श्रीराम ने अँधेरे में वाक्य पूरा किया, "देख रहा हूँ।"

कहीं कहीं दशहरे की लीला अर्थात् रावण-दहन शहर के बाहर होता है। अतः जीप में बैठकर राम-लक्ष्मण, रावण-हनूमान आदि दिलीपकुमार और मीनाकुमारी की चर्चा करते हुये अन्तिम युद्ध के लिये चल पड़ते हैं।

७—**दुर्घटनायें**—कभी-कभी दुर्घटनायें रंग में भंग कर देती हैं और साधारण अभिनेता संयम नहीं रख पाते। हमारे सामने ही जब अंगद ने पैर गाड़ने को तख्त पर मारा तो सच ही पैर स्थिर हो गया और अंगद बुरी तरह चीख पड़ा। सहसा रावण ने पैर जा थामा। जनता चौंकी। बात यह थी कि नये तख्त पर न जाने कैसे एक कील बाहर निकली रह गई थी। उसी पर अनजाने में अंगद का भरपूर जोर के साथ जो पैर पड़ा तो कील ने यथासंभव तल में प्रवेश पालिया।

कहीं-कहीं संजीवनी बूटी लाने का दृश्य बड़ा लुभावना और स्वाभाविक होता है। एक लम्बी रस्सी ऊँचाई पर बाँध दी जाती है। हनूमान जी को उसी रस्सी पर एक ओर से दूसरी ओर खींचा जाता है। एक बार उसी रस्सी पर हनूमान जी मँझधार में थे कि रस्सी टूट गई और कराहते चीखते हनूमान जी धरती पर आ रहे। जामवंत जैसे समझदार बन्दर पात्रों ने बात को सँभालना चाहा और जोर से चिल्ला पड़े, "अहा! हनुमान जी संजीवनी बूटी ले आये" किन्तु माइक पर श्रोताओं ने हनूमान जी

का उत्तर सुना, "आह ! संजीवनी बूटी की ऐसी की तैसी, पहले यह बताओ कि रस्सी किस उल्लू के पट्ठे ने तोड़ी है।"

यों रामलीला के दिनों में बरसात नहीं होती, पर सदा कौन रोक सकता है। एक बार जब रावण की लाश पर मन्दोदरी विलाप कर रही थी कि बूँदें पड़ने लगीं। मन्दोदरी सहित रावण मंच से तबला उठाकर भाग खड़ा हुआ। मेह बन्द हुआ, रावण फिर मर गया और मन्दोदरी पुनः विलाप करने लगी।

कभी-कभी साँड़, सूअर या दुमही जो लीला दिखाते हैं, उसे अनुभवी ही जानते हैं।

८—कम्पनी को इनाम—रामलीला चाहे किसी मुहल्ले के चौक में हो या बाड़े में, किसी पेशेवर मण्डली से यदि लीला कराई जाती है तो कम्पनी को दिये गये इनाम अतीव घृणा उत्पन्न करते हैं। हमने एक बार देखा कि काली की छोटी छोटी सात सवारियाँ निकल रहीं थीं। एक काली के शान्दार पेंतरे देख एक दुकानदार खुश हुआ और उसने नोट के साथ हाथ उठा दिया। काली की निगाह नहीं पड़ी तो साथ साथ आ रहा प्रबन्धक चीख उठा, "अबे मदन के बच्चे, इनाम क्यों नही लेता ? क्या आंखें फूट गई ?" लीजिये, काली दूकान के तख्ते पर ही चढ़ गई।

फिल्मी गीतों का मुहल्ले की रामलीला में महत्वपूर्ण भाग रहता है। लोग प्रसन्न हो इनाम देते हैं, भीड़ भी एकत्र होती है। अतः रावण और दशरथ के दरबार में लतामंगेशकर के गाने सुनाई देंगे। नये नये रसिया, गजल और आल्हा का रंग जमेगा। दोनों दरबारों में गाने और नाचने वाले एक ही होंगे।

जब दर्शक इनाम पर इनाम देते हैं, तब चाहे सुलोचना सती होने जा रही हो, या दशरथ मरणासन्न हों, लक्ष्मण के शक्ति लग चुकी हो या वैदेही के लिये राम का विलाप हो रहा हो, आपको बीच-बीच में कुछ ऐसा सुनाई देगा, "मुहल्ले के हरदिल अजीज सेठ राधेलाल पनवाड़ी उर्फ पुराने आशिक बल्द

कन्हैई ने खुश मिजाज हो कैकई के दुखभरे गाने 'रूठे-रूठे मेरे सरकार नजर आते हैं' पर एक रुपया नकद इनाम अता फरमाया है, कम्पनी उनका तहेदिल से शुक्रिया अदा करती है।"

९—स्त्री और बच्चे—रामलीला के दर्शकों में स्त्रियों और बच्चों का बहुत योगदान है। कहना चाहिये उत्सव के प्राण ये ही होते हैं। शोर मचाने में बन्दरों को मात करते हैं और हठ करने में केकई को लजा देते हैं। बच्चे किसी मेले से अधिक रामलीला को नहीं समझते, समझती स्त्रियाँ भी अधिक नहीं हैं। बैठी-बैठी इस उसकी बुराई, साड़ी की खरीद और ब्लाउज के कट पर चर्चा करती रहती हैं। किन्तु करुणा-स्थलों पर स्त्रियाँ (युवतियाँ भी शामिल हैं) अधिक प्रभावित होती हैं और प्रायः आँसू गिरा देती हैं।

जानकी-विवाह पर ये स्त्रियाँ धोती, बर्तन, टेबुल लेम्प, रुपया आदि इतना चढ़ावा लाती हैं (सीता का कन्यादान लेती हैं) कि उस दिन लीला आगे नहीं बढ़ती (दानियों के नामों की घोषणा होती है)। इस प्रकार कभी-कभी वर-पक्ष के अनेक नाम कन्या-दान लेने वालों में निकल आते हैं।

१०—खोमचे वाले—रामलीला को सफल बनाने में खोमचे वालों का विचित्र सहयोग रहता है। रामकथा के विभिन्न प्रसंगों की बगल में चाट मसाले की आवाज सुनाई पड़ती रहती है। कभी-कभी अनूठे संयोग उपस्थित हो जाते हैं (मुहल्ले या छोटे बाड़ों की लीलाओं में प्रायः)। जैसेः—

अ—"दूर से ही उड़ती धूल को देख, भरत को ससैन्य अनुमान करते हुये लक्ष्मण ने क्रोध करते हुये कहा......"
"दही बड़ा, गुजिया जायके दार"

ब—"अशोक बाटिका में अति प्रसन्न हो, हाथ जोड़ महावीर जी ने सीता माता से निवेदन किया......"

"खाओ आलू और छोले"

स—"हा लक्ष्मण ! तुम तो नित्य ही मुझ से मधुर वाणी में कहा करते थे ....."

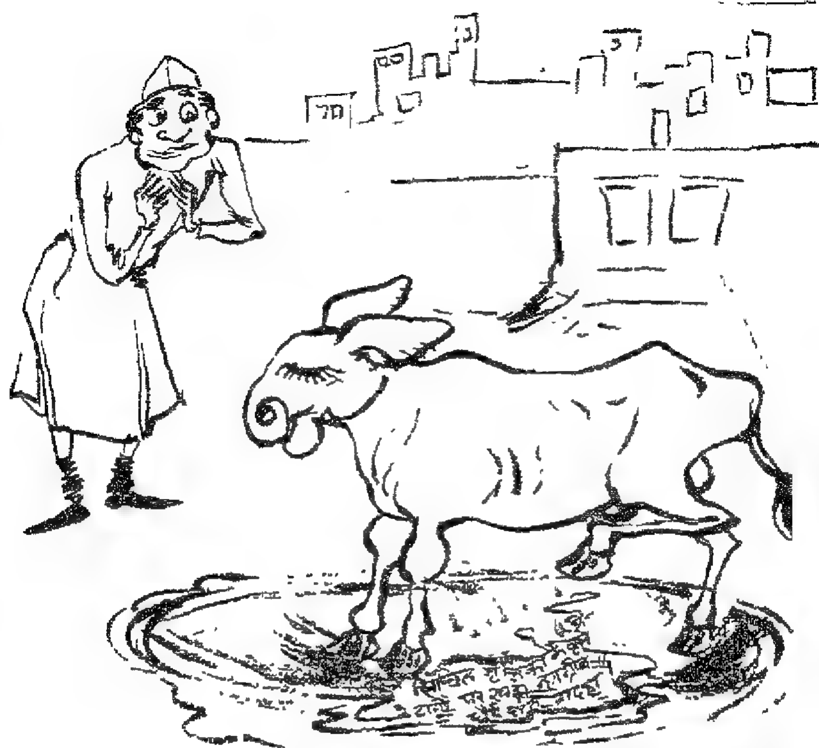
"पीजिये पहलवान छाप बीड़ी"

रामलीला प्रारंभ होने से पूर्व, किसी मध्यान्तर में, अपना कार्य न होने पर, या रामलीला समाप्त होने पर सम्पूर्ण वेश-भूषा में कभी दशरथ और मंथरा, सीता और रावण, लक्ष्मण और परशुराम या विभीषण और कुम्भकरण रेवड़ी चबाते, सिगरेट में दम लगाते या पान खाते दिखाई पड़ जाते हैं और भक्त लोग इसी दशा में चरण-रज लेते रहते हैं।

× × × ×

संभवतः उपर्युक्त कारणों से आज की रामलीला में अनेक त्रुटियों ने जन्म लेलिया है। अगर निर्देशन किसी भारतीय प्राचीन संस्कृति से सुपरिचित व्यक्ति के हाथों में रहे, पेशेवर मंडलियों से (जो प्रायः स्वांग ही किया करती हैं) दूर रहा जाये, तथा शिक्षित महानुभाव अभिनय के क्षेत्र में उतरें तो रामलीला अधिक स्वाभाविक और प्रेरणाप्रद बन सकती है, अन्यथा परम्परागत निर्वाह और असुरुचिपूर्ण मनोरंजन का साधन मात्र बनी रहेगी।

—o—



मूत्र सिंचित मृत्तिका के वृत्त में

हिन्दी साहित्य : सामान्यज्ञान परीक्षा, १९६२

प्रथम प्रश्न पत्र — (कवि और कविता)

समय—एक घंटा उन्तालीस मिनट — सम्पूर्णाङ्क—१००

नोट : सभी प्रश्न अनिवार्य हैं।

१—प्रयोगवाद की दो कविताओं की रचना कीजिये। शीर्षक देना आवश्यक नहीं है। २५

२—कवि-सम्मेलन के कवि से आप क्या समझते हैं? वह कहाँ पाया जाता है? क्या वह वीर रस को हास्य के सम्पर्क में लाता है? १५

३—असफल कवि की परिभाषा दीजिये। जीवन में उसे कौन-कौन से कार्य करने शेष रह जाते हैं? १५

४—(क) अर्वाचीन प्रयोगवादी कविता की परिभाषा क्या किसी प्राचीन कवि ने दी है? यदि हाँ, तो ज्यों-की-त्यों उद्धृत कीजिये। ५

(ख) निम्नाङ्कित दो पद्य-खण्डों का अर्थ न दे कर प्रसंग एवं टिप्पणी का मिश्रित रूप प्रस्तुत कीजिये। १०

अ—निकटतर धँसती हुई छत, आड़ में निर्वेद
मूत्र-सिंचित मृत्तिका के वृत्त में
तीन टाँगों पर खड़ा नत-ग्रीव
धैर्य-धन गदहा।

ब—सरग था ऊपर
नीचे पताल था
अपच के मारे बहुत बुरा हाल था
दिल दिमाग भुस का, खद्दर का खाल था।

५—(क) अतुकान्त कविता के उत्पादन के कारण बताइये। १०

(ख) कवि के लिए आज किन गुणों की अपेक्षा है?

६—अभी-अभी किस कविता-प्रकाशन को असाधारण घटना कहा गया है? अपने मत के साथ उस घटना का थोड़े से शब्दों में विवरण दीजिये। १५

—०—

उत्तर : प्रश्न संख्या २

कवि-सम्मेलन के कवि से एक विशेष व्यक्तित्व का भान होता है जो साधारण होते हुए भी सामने आकर भीड़ का मनोरंजन करने में असाधारण होता है। उसमें कवि की मात्रा कम, संगीतकार और अभिनेता का अंश अधिक होता है। कंठ के आसनों के ये जन विशेषज्ञ होते हैं। इनके उदर में चायश्री, मुख-कमल में पान-पराग एवं अधरों पर सिगरेट विराजती है उन्मीलित नयनों में किसी नई कवयित्री का

अभिराम चित्र या निद्रा के कारण बन्द आँखों में उसी का स्वप्न छाया रहता है। भिक्षाटन, जिसका सम्मानजनक पर्याय पारिश्रमिक रखा है, इनकी जीविका का प्रमुख साधन होता है। कुछ कवि वंश-परम्परागत भी होते हैं जिनके कई-कई कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके होते हैं किन्तु पूर्वजों के दरबारी स्वभाव के कारण पान-फूल में प्रसन्नता अनुभव करते हैं।

कवि-सम्मेलन के कवि को चार स्पष्ट विभागों में बाँटा जा सकता है; शृङ्गार, वीर और हास्य के अतिरिक्त शेष सभी मौसमी रस के कवि होते हैं। सामाजिक, राजनीतिक या साहित्यिक क्षेत्र में घटी घटना मौसमी रस के कवि को अशोक-होटल की भाँति आकर्षित करती है।

शृङ्गार-रस के कवि को दूर से ही पहँचाना जा सकता है। केश बड़े होते हैं और होंठ पतले। कंठ कोयल का घोंसला होता है। लवणता लिए साँवला, नहीं तो गोरा वर्ण होता है। दाढ़ी-मूँछ की जड़ मीलों नहीं मिलती। नखरे नव-वधू के से होते हैं, बहुत मधुर गाते हैं। नयन, अधर, केश और मखमली हाथों से गाने में दिन में भी चार चाँद लगा देते हैं। इनके पास एक नया गीत होता है, शेष सभी पुराने गीत सिनेमा की चाल के होते हैं। एक बार कवि-सम्मेलन के समाप्त होने पर, शृङ्गार-रस के सुन्दर प्रोफेसर कवि से किसी दढ़ियल गँवार व्यक्ति ने कहा था, "मैं मशहूर डल्ला-स्वाँग-मंडली का मैनेजर हूँ। एक रात के तीन-सौ रुपये दूँगा। अंधी-दुलहिन के 'पार्ट' में आप ऐसे खिलेंगे कि देखने वाले सीने पर हाथ मार कर तड़प उठेंगे।

जब कभी ये शृङ्गार रस के कोमलांग कवि श्रोता सुन्दरियों को देख कर बहकते हैं तथा विकृत स्वर कर वीर-रस की भूमि में अनाधिकार प्रवेश-चेष्टा करते हैं तब मुस्कराने के स्थान इन्हें सहम जाना पडता है। ऐसी दशा में ये असाडी के ठूँठ से उखाड़ दिये जाते हैं

वीर रस के कवि की पहिचान उचित वेश-भूषा के अभाव में मुश्किल है। कारण यह है कि आज के युग में धनुष केवल रामलीला में दिखाई देता है। आँखें गाँजे की चिलम में दम लगाने पर ही लाल होती हैं। तीर शहतीर में, तलवार मूँछों के कट में और वीर तस्वीर में ही नाम शेष रह गये हैं। वीर-रस के कवि थोड़े स्वस्थ हुए तो नुकीली मूँछें रख लेते हैं नहीं तो फूकना से सिकुड़े रहते हैं। किन्तु कभी-कभी ये मंच पर रुग्ण भूषण के अवतार जान पड़ते हैं (स्वस्थ भूषण से प्रचण्ड कवि इस डाल्डा ब्राँड युग में उत्पन्न नहीं हो सकते), स्वर फटते ही सभापति के बगलगीर हो जाते हैं।

शक्ल और अक्ल दोनों से हँसाने वाले हास्यरस के कवि स्वयं प्रकाशित होते हैं। ये प्रायः यम की तरह जम जाते है। संयोजक के चोले मे डाक्टर भी इन्हें प्रसन्न हो बार-बार बुलाते हैं। अच्छे-अच्छे कविराज हाथ मलते रह जाते हैं। हास्य रस के कवि कुछ अंशों में आशु होने के कारण वहीं पर दिमाग लडा कर तुक भिड़ा लेते हैं और चाहे जिसका नक्शा खींच देते है। पानी माँगने तक इनकी छीपटी-सी जीभ चटकती ही रहती है और जनता का मुख रसोई के धुमारे-सा खुला रहता है। कभी-कभी भारी जुकाम से अतिक्रमणित हो ये बीभत्स रस के कवि जान पड़ते हैं, किन्तु उस समय भी श्रोता जुगुप्सा-हीन ठहाके ही उड़ाता है।

कवि-सम्मेलन में भाग लेने वाले कवियों के साथ-साथ कवयित्री भी होती हैं जो कवि की पत्नी नहीं कहलाती। प्रिय-दर्शन होना आवश्यक होता है। ये कुमारी होने पर किसी मित्र को नहीं तो, पति को साथ घसीटती हैं। पति अपने घर पर ही पत्यावस्था में पहुँचता है, नहीं तो पत्नी के पर्सनल सेक्रेट्री का कार्य करता ही घुटता रहता है। प्रायः टी० बी० हो जाती है। कविता पाठ से पूर्व ही एक परम्परा गत हंगामा मच जाता है। ये बैठ कर पढ़ना चाहती हैं, जनता बैठ कर सुनना नहीं

चाहती। परिणाम यह होता है कि जब तक कवयित्री खड़ी नहीं होती, जनता खड़ा होना आरम्भ कर देती है।

खण्डकाव्य एवं महाकाव्य से प्रायः दूर रहने वाले ये कवि-सम्मेलन के कवि साकार रूप में मंच पर तथा निराकार रूप में सूची-बद्ध संयोजकों की जेबों में पाये जाते हैं। यदा-कदा पत्रिकाओं मे झलक मिल जाती है।

हाँ, कवि-सम्मेलन का कवि वीर रस को हास्य रस के सम्पर्क में लाता है। एक बार वीर रस के एक बाँकुरे कवि ने हुंकार भर अपनी कविता का शीर्षक पढ़ा, "आग, पानी और आवाज़!"

तुरन्त ही सामने खड़ा ग्रामीण श्रोता हाथ उठा कर चीखा, "हुक्का है!"

—०—

उत्तर: प्रश्न संख्या ३

जो दूसरों की प्रथम श्रेणी की कविताओं की निन्दा करे या मौन रहे और अपनी तृतीय श्रेणी की रचनाओं की प्रशंसा, वह असफल कवि कहलाता है। दूसरी परिभाषा के अनुसार लोक-धुन के आधार पर गीत लिख, चुटकी बजाते हुए सुनाने वाले, साथ ही अँग्रेजी नाटकों के अनुवाद पर उतर आने वाले कवि को भी असफल कवि कहते हैं।

जीवन में असफल कवि के लिए निम्नलिखित कार्य करने शेष रह जाते हैं:

१—क्लासिकल शैली में किसी अमर पुस्तक का अनुवाद करना, जैसे मानस की दोहा-चौपाई शैली में ऋग्वेद का अनुवाद। फिर अनुवाद का जन-ऋग्वेद नाम रखना।

२—किसी विश्व-प्रसिद्ध शृङ्खला का हिन्दी-अनुवाद कर अभिनय भी करना, जैसे शेक्सपीयर के सभी नाटकों का रूपान्तर करना फिर हिन्दी शेक्सपीयर का विज्ञापन करना

३—अधिक पारिश्रमिक अथवा अध्यक्ष-पद की शर्त के बहाने से कवि-सम्मेलनों में भाग लेना बन्द कर देना।

४—किसी अन्य कला की ओर रुचि प्रदर्शित करना, उदाहरण के लिए अपने घर में चित्र या मूर्तियाँ एकत्र करना।

५—प्रारम्भिक अप्रकाशित रचनाओं को प्रकाशित करना या सभी प्रकाशित संग्रहों में से बाल की खाल की भाँति नवीन-नवीन संग्रह निकलवाते रहना।

६—सामयिक प्रसिद्ध साहित्यकारों की जीवनी, संस्मरण, इण्टरव्यू तथा पत्र-व्यवहार प्रकाशित कराना तथा किसी पत्रिका में "कहीं इन्हें भूल न जायें" जैसा स्तम्भ लिखना।

७—नये कवियों की कविताओं का सम्पादन करना एवं भूमिका लिखना।

८—अन्य विधाओं में हाथ की सफाई दिखाना, जैसे बचपन में लिखे किसी वृहत् उपन्यास का आविष्कार करना जो प्रौढ़ उपन्यासकारों का मार्ग-प्रदर्शन कर सके।

९—सांस्कृतिक मण्डलों में सम्मिलित हो या किसी अन्य बहाने से देश के प्रतिनिधि बन विदेश जाना।

१०—राजनीति में कूद पड़ना।

११—यात्राओं का सचित्र वर्णन लिखना।

१२—दर्शन और संस्कृति पर लेख लिखना एवं राजनीतिक नेताओं की बरसियों पर प्रथम दर्शन से लेकर अन्तिम भेंट तक का वर्णन लिखना। उन्हें पत्रिका-क्रम और वर्ष-क्रम से प्रकाशित कराना।

१३—नये मुहावरे या सुभाषित लिखना।

१४—"आप का पत्र मिला" स्तम्भ में कुछ-न-कुछ देते रहना।

१५—किसी वाद-विवाद में उलझ जाना

१६—किसी साहित्यकार की मौत पर शोक-सभा में अशोक मन से भाग लेना।

१७—अभिनन्दन-ग्रन्थों या स्मारक-ग्रन्थों का सम्पादन करना।

१८—सलाहकार-मण्डल या परामर्शदाता-समिति में नाम सम्मिलित कराना।

१९—सरकार की वैतनिक या अवैतनिक (जो वैतनिक से अधिक मूल्यवान होती है) सेवा करना आदि आदि।

—o—

उत्तर : प्रश्न संख्या ४

(क) जी हाँ, अर्वाचीन प्रयोगवादी कविता की परिभाषा प्राचीन कवि गिरधर ने दी है; उसे ज्यों-का-त्यों उद्धृत किया जाता है:—

भदेस भाषा छन्द अति मुक्त, विशृङ्खल भाव।
अभिनव अनगढ़ विषय हो, शब्द करें पथराव॥
शब्द करें पथराव भूमिका अति आवश्यक।
बिना धूम-संकेत न ज्यों मिल पाती पावक॥
कह गिरधर कविराय कि कविता पर-युग-वादी।
स्वयं न समझे जिसे वही सब को समझा दी॥

(ख) भदेस भाषा के न होने के कारण वीभत्स-रस से बाल-बाल बच जाने वाले प्रथम पद्य-खण्ड का रचयिता कोई कुम्हार या धोबी जान पड़ता है जिसको, मार खा कर भाग छूटा गधा दो दिन बाद ढहते मकान के पास इस चित्र-लिखित दशा में मिला है। यह कहना संभव नहीं कि रचयिता कितना शिक्षित है, किन्तु इतना निश्चित है, कि कभी-न-कभी वह कृषि का विद्यार्थी रहा है और इस पद्य-खंड में सिंचाई के नवीन साधन का आविष्कार किया है।

गधा भी पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित ग्रेजुएट से कम नहीं लगता, तभी तो खड़े हो कर मूत्र-धार का किया

है। कवि प्रगतिशील है और समाजवादी भी। इसीलिए उपेक्षित प्राणी को कविता का लक्ष्य बनाया और उसे वीतराग, चिन्तन-साधक, अल्पना-विशेषज्ञ और तपस्वी कहा है (तपस्वी सदा एक टाँग उठा कर शेष टाँग पर खड़े होकर तपस्या करते थे), विनम्र एवं धैर्यवान् सिद्ध किया है।

दूसरे पद्य-खण्ड के रचयिता का अनुमान नहीं हो पाता। यह रचना किसी ऐसे जन्मजात नेता के विषय में जान पड़ती है जिसकी चमड़ी ही खद्दर की थी (खद्दर का खाल था), किन्तु बुद्धि नाम को भी नहीं (दिल, दिमाग भुस का), अथवा जो नेता बनने से पूर्व भुस को आढ़त करते थे। इसी कारण उनका दिल, दिमाग भुस का होकर रह गया था अर्थात् सदा भुस के चिन्तन में डूबे रहते थे। हाँ, चित्रण उस समय का है जब नेता जी जेट विमान में उड़ रहे थे। ऊपर अनन्त आकाश था, नीचे धरती का पता नहीं था। उधर, पेट में कब्जियत के कारण ऐंठे का दर्द हो रहा था। लगता है कि पड़ौस में ही है जिसके वैद्य, ऐसा कवि नेता का सहयात्री था, नहीं तो "अपच के मारे बहुत बुरा हाल" को कैसे ताड़ पाता।

—०—

उत्तर : प्रश्न संख्या ५

(क) साहित्य समाज का दर्पण है। कविता इसी दर्पण का एक साफ टुकड़ा है। अतः आज के बेतुके जीवन में कविता ही कैसे तुकान्त हो सकती है। फिर भी अतुकान्त कविता-उत्पादन के अनेक कारण हैं। 'प्रति दिन तो खीर भी स्वादिष्ट नहीं लगती' नियम के अनुसार तुकान्त कविता करते-करते कवि ऊब चुका था। दूसरे, तुकान्त कविता के छन्द साबुन की टिकियाओं-से रखे ज्ञात होते हैं और आज का कवि स्नान तथा कपड़े धोने से घबड़ाता है। तीसरे, घूँघट जैसे कुरूपता को छिपा लेता है या अंग्रेजी जैसे मूर्खता और चरित्र को छिपा लेती है वैसे ही अतुकान्त कविता अकाव्य प्रतिभा को प्रकाश मे आने से

रोकती है। चौथे, सम्प्रदाय-प्रवर्तक की भाँति जब निराले समर्थ कवि राह दिखा गये, तो, बिना योग्यता ही सही, अनेक अनुगामी निकल आने आवश्यक थे। पाँचवाँ और प्रमुखतम कारण प्रकाशन की शीघ्रता एवं शादी के अभिनन्दन-पत्र लिखते रहने के कारण कवि के पास समय की कमी है। कवि के द्वार पर जब हठी प्रकाशक या सम्पादक अनशन कर बैठता है, तो कवि गद्य लिख, तिरछा पैमाना रख, ब्लेड के सहारे दो कविताएँ तैयार कर देता है।

और फिर अतुकान्त कवियों के कथनानुसार अतुक के कारण कविता हमारी चेतना को तरंगित करती है। अतुक की गूँज या झंकार, जीवन की गूँज या झंकार बन जाती है। अतुकों के द्वारा इस रंग-बिरंग जीवन और संसार की अनेकता का आभास होता है। शृङ्खला-बद्ध नीरस वस्तुएँ बिखरी और सरस अनुभव होती हैं। हमारी बोली की वाणी में अतुक से वे तार जुड़ जाते हैं, जो कई हजार वर्ष पहले हमारी भाषा की वीणा में मौजूद थे।

(ख) किसी भी प्रकार के कवि के लिए आज किसी भी विशेष गुण की आवश्यकता नहीं है। उदाहरण के लिए बिना सर्वहारा-वर्ग के बीच एक क्षण बिताये आप विद्युत् पंखे के नीचे, चिकनी मेज पर, किसी कल्चर्ड सुन्दरी के हाथों-बनी चाय चखते हुए प्रगतिवादी कविताएँ लिख सकते हैं। नयी कविता के रचना-क्षेत्र में किसी भी ऐम० ए० या पी-ऐच० डी० का जीजी के घर में भाई की तरह अबाध प्रवेश-अधिकार होता है। सच तो यह है कि आज कवि को किसी भी (जिस प्रकार हाथ के पंखे को बिजली की अपेक्षा नहीं होता, उसी प्रकार) परम्परागत गुण, पिंगल-शास्त्र, देशाटन, अध्ययन, अथवा गुरु-सीख की कतई अपेक्षा नहीं होती। प्रकाशन-सुविधा ही सर्वश्रेष्ठ योग्यता है।

०

उत्तर : प्रश्न संख्या ६

कविता के क्षेत्र में 'तिलोत्तमा' के प्रकाशन को असाधारण घटना कहा गया है। कविता-प्रेमियों को इस असाधारण घटना का ज्ञान तब हुआ जब 'तिलोत्तमा' की तूफानी गति से नियोजित विज्ञापन के रूप में आलोचना (प्रशंसा) प्रकाशित हुई। हिन्दी एवं अंग्रेजी (अन्य भाषा से मैं परिचित नहीं) की अनेक पत्रिकाओं में यह विज्ञापन (किसी-किसी में सचित्र) निकला, मानो कि आलोचक क्रय, अध्ययन एवं लिखने की सामूहिक प्रतीक्षा में थे। आरती में शब्दकोष रिक्त हो गये। जिन भले आदमियों ने किसी कविता-पुस्तक का आवरणपृष्ठ नहीं छुआ, उन्होंने 'तिलोत्तमा' को 'कामायनी' के बराबर पत्तल डाल दी।

मेरे मत से 'तिलोत्तमा' उर में बस नहीं पाती। 'विन्ध्याचल के प्रति', 'इन्दौर' और 'कथाकार की मृत्यु' के कवि ने शब्दों से फ्री स्टाइल कुश्ती ही लड़ी है। जबर्दस्ती झटकों के साथ स्याही छिड़क-छिड़क कर पंक्तियों का निर्माण किया है। सच तो यह है कि 'अभारतीय सभ्यता के तीन अध्याय' के साथ ही कवि की कविता-शक्ति को राज-रोग हो गया था।

समय-सूप की फटकन में 'तिलोत्तमा' के सही स्थान का पता लगेगा।

जो भी हो, कवि के व्यक्तित्व के कारण निकट भविष्य में इस का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित होगा, हिन्दी की परीक्षाओं में यह टैक्स्ट बुक बनेगी और कोई बड़ा पुरस्कार प्राप्त होगा। 'भाषा' देखती रह जायेगी 'और समाज' ताकता।

—०—

उत्तर : प्रश्न संख्या १ : दो प्रयोगवादी कविताएँ

(एक)

मैं

सूखा पेड़···

बहार का

सामने
धर्मशाला
एक धर्मशाला
जिस पर अंकित है—
"प्राचीन धर्मशाला
संस्थापन-काल सन् १८६२ ई० ।"
और
उधर, एक शो
एक चैरिटी शो
बाहर विज्ञापित है—
"बाढ़-पीड़ितों की सहायतार्थ—
बरसात की रात ।"

मैं
सूखा पेड़···
बहार का ।

(दो)

दोस्त !
यह मक्खी है
वह मक्खा है
कारण स्पष्ट है ।
यह आईने पर आ बैठी है
वह सिगरेट पर जा बैठा है ।

दोस्त !
यह मक्खी है
वह मक्खा है
कारण स्पष्ट है ।

०



"अब जब फेल हो गये हो तो वर्ष भर का हिसाब दो"

यादराम : एक चंचल छात्र

अलंकारों पर विद्वत्तापूर्वक भाषण देकर, नये प्रोफे
एम० ए० प्रीवियस के छात्रों पर आतंक जमा चुके थे कि प
की बेंच पर यादराम खड़ा हो गया सर कविता की एक प
मे पूछना है

"पंक्ति पढ़ो।"

"जी ! कौआ अंधेरी रात में दिनभर उड़ा किया।"

प्रोफेसर साहब तनिक दूर थे, सुनकर भी अनसुना किया और ऊँची आवाज में आदेश दिया,

"जोर से कहो।"

यादराम ने ठहर-ठहर कर दुहराया, "कौआ अंधेरी रात में दिन भर उड़ा किया।"

अब छात्र अपनी हँसी न रोक सके। प्रोफेसर का चेहरा क्रोध के कारण लाल हो गया। कारण, काव्य-शास्त्र के सराफे मे चक्कर घिन्नी काटने पर भी इस कविता (?)-कामिनी के अनुकूल कोई अलंकार दिखाई न दिया। वे छात्र की बदतमीजी पर बिगड़ना चाहते थे कि पीरियड समाप्त हो गया और हँसती कक्षा बाहर आगई।

यह कोई नई बात न थी। लम्बे और सदैव सोये से रहने वाले, नीलवर्ण के, आकर्षक व्यक्तित्वशाली युवक यादराम ने हमेशा से अध्यापकों, अभिभावकों या अन्य महानुभावों को व्यंग्य-विनोद से परेशान किया है। और अपना काम भी निकाला है। हँसी मजाक करते समय यादराम बड़ा भोला लगता है। इच्छानुसार मुखाकृति बनाने में उसे कमाल हासिल है।

अलिफ दर्जे की बात है। उस समय यादराम की उमर-बेल में सातवाँ अंगूर लग रहा था। वह अध्यापक के पास एक छात्र को ले गया, "साब, इसने मेरी पीली पेंसिल चुराली है।"

अध्यापक ने अपनी जेब से एक पीली पेंसिल निकाली, "पीली पेंसिल तो ये भी है।"

यादराम तनिक भी नहीं रुका, "यह पेंसिल भी मेरी है। कुछ दिन हुये मेरी एक पीली पेंसिल और खोगई थी।"

अब महोदय क्या कहते ?

कक्षा चार का किस्सा लीजिये। एक बार डिप्टी साहब मुआयना करने आये। उस कक्षा की बुद्धि परीक्षा के लिये प्रश्न किया, "अगर हिन्दुस्तान का गदर १० मई १८५७ को आरम्भ हुआ था और टूँडले के रेलवे प्लेटफार्म की लम्बाई २३२ फीट है तो मेरी उमर क्या है ?"

कक्षा-अध्यापक सहित सभी छात्रों ने प्रश्न को सुना मगर समझ में किसी के न आया। उसी समय यादराम ने सीधा हाथ उठाया, "जी, ४४ साल।"

डिप्टी साहब सकते में आ गये। यह सही उत्तर कैसे और कहाँ से निकल आया। पूछ बैठे, "भाई, जादू जानते हो। कैसे निकाला ?"

"सीधी सी बात है" यादराम खड़ा होगया, "हमारे यहाँ एक नौकर है, उसकी उमर बाईस साल है और वह आधा पागल है।"

डिप्टी साहब झेंप के मारे कक्षा के बाहर निकल गये और तब डरता हुआ अध्यापक भी खुलकर हँस सका।

सातवीं कक्षा में आर्ट मास्टर भेड़िया की शक्ल ब्लैक बोर्ड पर समझा रहे थे, परन्तु लड़के शोरगुल में लगे इधर उधर देख रहे थे कि यादराम ने फर्माया, "लड़को, अगर भेड़िये की शकल ठीक ठीक समझनी है तो इधर उधर क्या देखते हो, मास्साब की तरफ देखो।"

संभवतः नवीं कक्षा की बात है। एल० टी० के छात्र प्रेक्टीकल के लिये कक्षा लेने आया करते थे। उनसे यादराम की मिठाई पक्की रहती थी किन्तु एक ने साफ इन्कार कर दिया। एक दिन वे ही कक्षा में इतिहास पढ़ा रहे थे, "जिस समय नेपोलियन ने मिश्र पर हमला किया, उसका दाँत हिन्दुस्तान पर लगा हुआ था '

यादराम तुरन्त खड़ा हो गया। नोट बुक पर पेंसिल गड़ाते हुये बोला, "सर, उस दांत की लम्बाई चौड़ाई क्या थी, मैं क्षेत्रफल निकालना चाहता हूँ।"

अन्तिम बैंच पर बैठे निरीक्षक ने सिर उठाया। एल० टी० के उस छात्र को पसीना आगया।

कहना न होगा कि दूसरे दिन यादराम ने मिठाई पर भरपूर हाथ मारा।

इण्टर में तो यादराम ने अपने अध्यापक की बड़ी सहायता की। बात यों हुई कि कालेज का इन्सपैक्शन हो रहा था। भूगोल की कक्षा में गन्ने की उपज का विषय चल रहा था। सहसा इन्सपैक्टर ने प्रवेश के साथ-साथ प्रश्न किया, "क्या मद्रास में भी गन्ना होता है?"

अध्यापक ने एक होशियार छात्र की ओर इशारा किया किन्तु इन्सपैक्टर महोदय ने यादराम को पकड़ा। यादराम अपनी फिल्मी दुनिया में थे किन्तु खंभ से खड़े हो गये और प्रश्न रूप में उत्तर दिया, "सर, मद्रास से आपका क्या तात्पर्य है? मद्रास प्रान्त, मद्रास जिला या मद्रास शहर?"

इन्सपैक्टर मुंह बिचकाता बाहर हो गया।

किन्तु बी० ए० में यादराम जनरल इंगलिश के कारण फेल हो गये। उन्हें दुख तो हुआ किन्तु तुरन्त सँभल गये। जिस किसी ने फेल होने का कारण पूछा, एक ही कारण बताया, "बुद्धिमान लोग मूर्खों के प्रश्नों का उत्तर नहीं देते।"

किन्तु जब पिता ने फेल होने का कारण पूछा तो यादराम ने फर्माया, "बात यह हुई पिताजी कि मेरे उत्तर अंगरेजी-परीक्षक को इतने पसन्द आयेकि उन्होंने मेरी कापी पर लिखदिया 'वन्समोर' यानी एक बार और लिखो। बस, मुझे दुबारा लिखना पड़ेगा।"

इतने से पिताजी सन्तुष्ट न हुये, "यादू बेटे, अगर तुम पास हो जाते तब तो कोई बात नहीं थी, अब जब फेल हो गये हो तो वर्ष भर का हिसाब दो, इतने रुपये कैसे खर्च हो गये ?"

अब यादू बेटा घबड़ा गये। उसी समय विधवा बुआ आ टपकीं और यादराम पर दुहरी मार पड़ने लगी। यादराम ने तुरन्त बुआ की ओर पीठ की और पीछे सरकते हुये चुपके से दस का नोट थमाया और रोते से बोले, "देखो न बुआ, एक तो फेल हो गये, आजकल की प्रथा के अनुसार सहानुभूति और सान्त्वना के शब्द तो दूर उल्टा पुराने जमाने की तरह डाट रहे हैं। कहीं हम क्रोध में आकर कूद या डूब मरें तो।"

दस रुपये के इन्जेक्शन ने एकदम प्रभाव दिखाया। बुआ सहसा नरम हुईं, और अपने भाई पर बरस पड़ीं, "ठीक कहता है यादू, एक तो फेल होने का गम दूसरे तुम और घाव पर नमक छिड़क रहे हो। जा बेटा यादू खेल, पर इस बार महनत करना।"

यादू जी रस्सी तुड़ाकर भागे।

बी० ए० फाइनल में ही एक अँगरेज से आपकी झड़प मशहूर हो गई थी। हुआ यह कि एक अँगरेज विद्वान पधारे और शेखी बघारी, "मैं संस्कृत एवं हिन्दी में डबल एम० ए० हूँ अतः हिन्दी को भली प्रकार समझता हूँ।"

सभी अध्यापक चुप मगर हिन्दी-परिषद के मंत्री के नाते यादराम बोले, "श्रीमान्, हिन्दी का समझना बड़ी टेढ़ी खीर है ?"

अँगरेज विद्वान सोचने लगा कि पड़ी खीर भी हो सकती है और खड़ी खीर भी, मगर यह टेढ़ी खीर क्या बला है ?

"टेढ़ी खीर" उसके मुख से निकला

"जी हाँ, लोहे के चने चबाना है"

"लोहे के चने ?"

"जी," यादराम ने अन्तिम पहेली छोड़ी, "हिन्दी का समझना सिला बीनने से कम नहीं है।"

अँगरेज विद्वान चक्कर में थे। शिला माने चट्टान, तो यह चट्टान बीनना क्या हुआ ? लोग मन्द मन्द मुस्करा रहे थे।

यादराम होस्टल में रहा करते थे और व्यावहारिक शैतानियां किया करते थे। एक बार गाँव से बाबा आ धमके और यादराम को आदेश दिया, "बेटा घड़ी में चाबी भर ले। तीन बजे की गाड़ी से मेरठ जाना है।"

यादराम ने आदेश का पालन किया।

बाबा की आँख ग्यारह बजे खुल गई, "बेटा, यादू देर तो नहीं हो गई।"

"बाबा अभी तो ग्यारह बजे हैं, सो जाओ।"

बाबा की आंख ११½ बजे फिर खुली, "बेटा यादू, देर तो नहीं हो गई।"

"अरे बाबा, अभी तो ११½ ही बजे हैं, सोओ"

मगर बाबा की आँखें १२ बजे फिर खुलीं, "यादू बेटा, चल। अब तो देर हो ही गई है।"

रोशनी जलाने बुझाने से तंग यादू तड़प उठा, "चलिये बाबा"

तीसरे दिन बाबा फिर आये, "अरे यादू बेटा, तू तो बड़ा नालायक निकला। जाना कहाँ और पहुंचा कहाँ ? किस गाड़ी में बैठाल आया था रे।"

"बाबा" यादराम ने खेद प्रकट किया, "तुम तो आध आध घण्टे में दीदे चमकाते थे। तीन बजे तक तो मैं छः बार और उठक बैठक करता। तुम्हें गाड़ी में बैठने की जल्दी और मुझे सोने की। आज मत घबड़ाना, ठीक जगह पहुंचा दूँगा।"

बहिन की शादी आ पड़ी। यादराम की पिताजी से निम्न वार्ता हुई -

"तुम्हारी बहिन की शादी है।"

"मालूम है।"

"तुम क्या करोगे।"

"मैं क्या कर सकता हूँ।"

"तुम्हारी बहिन की शादी है।"

"तो हो जायेगी।"

"तुम कुछ नहीं करोगे।"

"मैं क्या कर सकता हूँ।"

"हिसाब ही रखो।"

"जैसी आज्ञा।"

और यादराम ने पाई-पाई का हिसाब रखा। जैसे कोई चीज आई, तो किस दर से आई, कितने की आई, किसके द्वारा आई, और कहाँ से आई। पत्तर भोलुआ और दियासलाई तक का इसी व्यवस्था से हिसाब लिखा। शादी के पश्चात हिसाब सुना तो पिता जी फड़क उठे किन्तु अन्त में यादराम बोले, "तीन सौ रुपया फुटकर खर्च।"

प्रसन्न पिता चौंक कर नाराज हुआ, "यह फुटकर खर्च कैसा ?"

"अब देखिये पिताजी" अब बेटा बिगड़ा, "मैंने एक-एक पैसे का हिसाब क्या बढ़िया लिखा है। जरा भी भूलकी गुंजाइश नहीं। फिर भी क्या शादी ब्याह के झंझट में सारा खर्च याद रहता है ?"

"फिर भी तीन सौ रुपये किस मद में खर्च हो गये।"

"आप इतने ही उत्सुक हैं तो दूसरी बहिन की शादी में बतादूँगा।"

पिताजी लम्बी साँस छोड़कर रह गये।

कुछ दिनों बाद यादराम शहर से लौटे तो एक सूट डाटे थे और एक कंधे पर पड़ा था। बाबा ने टोका, "बेटा यादू, सच-सच बता बहिन के विवाह मे कितना रुपया साफ किया ?

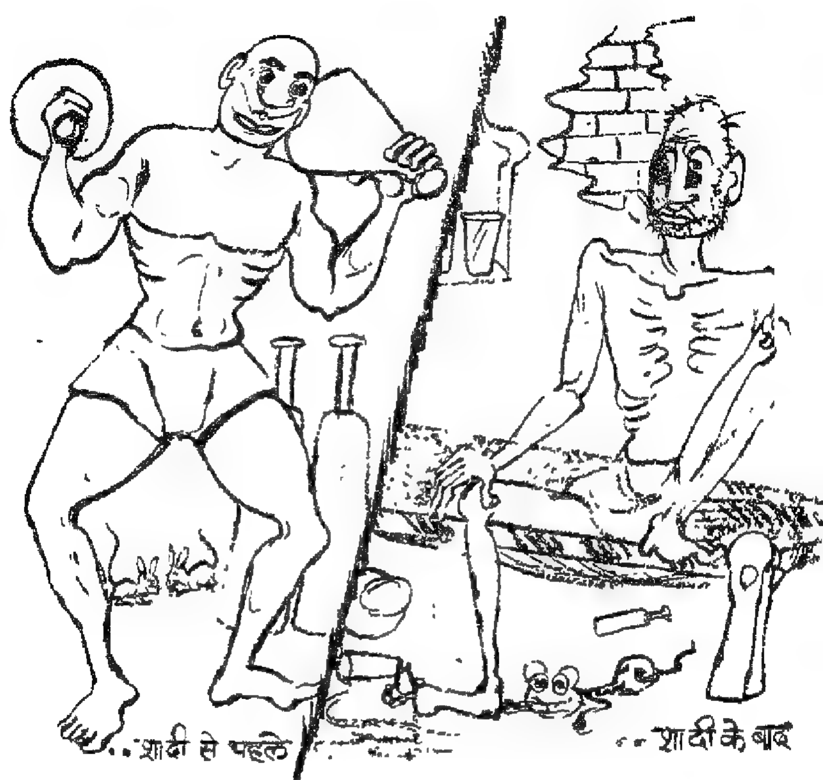
"बाबा, ईमान लेलो" यादराम ने सफाई दी, "३००) में से हमारे पल्ले कुछ नहीं पड़ा। सिलाई में कमी पड़ गई तो बाईस रुपये गाँठ से निकल गये।"

× × × ×

एम० ए० प्रीवियस में प्रतिभाशाली छात्र यादराम के प्रथमश्रेणी के अंक आये तो इस जीवन-मरण के मोड़पर यादराम गंभीरता के साथ अध्ययन में जुट पड़ा। पर छात्रों ने उसे छात्र-संघ का सभापति बनाकर ही छोड़ा। यादराम फिर भी तटस्थ रहा। छात्र-संघ के उद्घाटन समारोह में भी भाग नहीं लिया किन्तु अवसानोत्सव पर देश के एक बहुत बड़े नेता को बुलाया गया अतः यादराम ने सभापतित्व सँभाला।

भाषण दे, पार्टी उड़ा, जब नेता जी कार में बैठ विदा होने लगे तो उनके मुखारविन्द से निकला, "आज तो मुझे गधों के सामने बोलना पड़ा।"

प्रिन्सिपल, प्रेसीडेन्ट, मंत्री एवं अध्यापक आदि सभी अधिकारी कुछ कहना चाह कर भी मूक बने थे किन्तु वर्ष भर पहिले की सोई प्रतिभा ने करवट ली। छात्र-संघ के सभापति यादराम ने हाथ जोड़े, सिर झुकाया और विनम्रता पूर्वक निवेदन किया, "श्रीमान् जी, क्षमा कीजिये। यह तो हम उसी क्षण समझगये थे जब आपने भाषण के प्रारंभ में कहा था, भाइयो और बहिनो।"



शादी के बाद : एक पहलू

आदमी शादी से पूर्व आदमी होता है और शादी के बाद, जब लक्ष्मी घर आ जाती है तो उल्लू। रात्रि जागरण भी होता है। दो वर्ष बाद जब पार्श्व में दोनों ओर बच्चे होते हैं, और वह करवट तक नहीं बदल सकता तो स्वयं को काठ का समझने लगता है। वास्तव में शादी के बाद कोई न कोई उपाधि अवश्य मिलती है। पत्नी के रस सिक्त इशारों का उत्तर न दे तो वह गँवार समझती है और यदि फुर्ती से अनुकूल प्रक्रिया दिखाता है तो अनपोलिश्ड पत्नी का साथ देने पर माँ बाप जोरू का गुलाम

कहते हैं। माँ बाप की आज्ञा में रहे तो मित्र बैकग्राउंड पुकारते हैं। फिर भी कोई कुवारा या विधुर रहना नहीं चाहता।

आइये, कुछ उदाहरणों से शादी-सरिता के दोनों किनारों (पूर्व और पश्चात्) की सैर कराते हैं—

आपसे मिलिये। आप नगर के चारों ओर लगे बीसियों भट्टों के मालिक थे। झोंपड़ी तक में आपके भट्टे की ईंटें लगी थी। क्या आन थी, क्या शान थी। कार से नीचे पैर नहीं रखे। शादी हुई तो पत्नी अप्सरा मिलीं। एक वर्ष बीता तो शयन-कक्ष और कार के बीच से भट्टे उड़ गये। तीन वर्ष बाद होश आया तो पाया कि नौकर ही भट्टों के मालिक बन बैठे हैं। न कार रही है, न कोठी। जहाँ मोस्ट अपटूडेट रहते थे, वहाँ अब हजामत बढ़ी हुई है, कमीज फटी हुई है, गंदे पाजामे का नारा जमीन को छू रहा है। साल भर आगरे भी रह आये। शादी से पूर्व श्रीविलास थे तो शादी के बाद सिलबिल हो गये।

उधर देखिये, उस नाली के सहारे जो महाशय टूटी खाट पर खाँस रहे हैं, शादी से पहले महावीर पहलवान के नाम से जाने जाते थे। शरीर-श्री के लिये विख्यात थे। भारत-श्री प्रतियोगिता में उत्तर प्रदेश का आपने ही प्रतिनिधित्व किया था। जंघायें परस्पर टकराती थीं तो चिनगारी फूटती थी। भुजदण्डों में मछलियाँ तैरतीं थीं। भरे चेहरे पर बिच्छू के डंक सी मूँछें तनी रहतीं थीं। शादी हुई तो कुश्ती लड़ना छूट गया, बादाम विदा हो गये, दूध पानी में बदल गया। अब गालों में प्याला समा सकता है, हड्डियाँ नक्शों में पहाड़ सी उभर आई है और चेहरे पर मूँछों की छूछ भी नहीं रही। आखिरकार बीबी टी० बी० साबित हुई। जिस मुँह से अंडा गटका करते थे उस मुँह में थर्मामीटर अटका रहता है। म्यान से तलवार खींच कर पैंतरा बदलने वाले हाथ अब दियासलाई से सींक नहीं निकाल सकते।

इधर ये महाशय हैं, संस्कृत के प्रतिष्ठित प्रोफेसर और भारत की प्राचीन संस्कृति के महान पुजारी। निम्न छः सिद्धान्तों का दृढ़ता के साथ प्रचार और पालन किया करते थे—

१—डाक्टर के पास न जाना।

२—किसी के सामने हाथ न फैलाना (कर्ज न लेना)।

३—रात को दस बजे सो जाना और प्रातः पाँच बजे उठना।

४—सिनेमा से दूर रहना।

५—महिलाओं के संपर्क में न आना। एवं

६—उपन्यास कहानी न पढ़ना।

शादी हो गई। आजकल आपके बलात्कार (आपको और आपकी पत्नी को देखकर कोई भी सरलता से इसी परिणाम पर पहुँचेगा) से उत्पन्न छः बच्चे हैं। सिद्धान्त एक भी नहीं रहा।

लो, ये आये सींकिया बादशाह। शादी से पूर्व भयानक मोटे थे। दन्त कथाओं का एक नमूना पर्याप्त होगा। एक बार एक गाँव को ट्रक में लदकर गये तो गन्तव्य स्थान पर उतरकर सुस्ताने खड़े हो गये। बच्चों में शोर मच गया। जि कौन है? जि कौन्ने बनायो? एक लड़के ने उन्हें गौर से देखा तो आपने पैर चला दिये। वह एक दम चीखा, "अरे जि तो चलतुऐ।"

शादी हुई तो पत्नी स्वेटर बुनने की सलाई सी पतली। मगर ईश्वर की मर्जी। मोटापे का स्थानान्तर आरंभ हुआ तो श्रीमती जी फुटबाल होगई और श्रीमान जी रह गये हवा भरने के पम्प मात्र।

अध्यापक क को एक बार प्रिन्सिपल ने गधा कह दिया तो आपने भी पलट कर कहा था, "आप मुझसे बड़े हैं, कुछ भी कह सकते हैं। वैसे जो लक्षण मुझमें हैं वे आप में भी हैं" बड़ा हंगामा मचा। बात प्रबन्ध समिति तक गई किन्तु क ने क्षमा याचना नही की और जब प्रिन्सिपल ने अपनी प्रतिष्ठा ही दाव

पर लगादो तो आपने त्याग-पत्र दे दिया तथा दूसरे कालेज मे नौकरी करली ।

इसी बीच क की शादी होगई । तुरन्त बच्चा भी हुआ । अब प्रिन्सिपल दिन में दस बार गधा कहता है तो भी आप, अपने में गधे का कोई भी लक्षण न पाते हुये 'यस्सर' कह कर रह जाते हैं । नौकरी छोड़ने की 'रिस्क' अब नहीं ली जा सकती ।

शादी से पूर्व अध्यापक क घोड़े पर चढ़े थे और शादी के बाद उन्हें गधा कहा जाता है ।

श्रीयुत ख विवाह से पूर्व ग्रेजुएट पत्नी को अपने सेक्रेटरी के रूप में देखना चाहते थे । शादी के बाद पत्नी ने पढ़ना बन्द नहीं किया, और न सामाजिक कार्य-क्रम छोड़े । काल क्रमानुसार वे पी० एच० डी० भी हुईं और प्रान्त की मंत्राणी भी ।

अब आप अपनी पत्नी के सेक्रेटरी हैं ।

ग महोदय पढ़ते थे तो बड़े सैलानी थे । घर से बाहर रहना बड़ा प्रिय था । लड़की देखने गये तो उसे लक्ष्मी पाया और उसके हाथ से बने भोजन की बड़ी प्रशंसा की । शादी के बाद उन्हें कोई काम नहीं मिला । परिणाम यह हुआ कि बाप ने घर से निकाल दिया ।

अब श्रीमती जी सर्विस करती हैं और आप भोजन बनाने में पटु हो चुके हैं । जब श्रीमती जी हारी थकी आफिस से शाम को आती हैं तो आप सेवाकारिणी पत्नी की भाँति चाय पेश करते हुये किंचित मुस्कराते मिठियाते पूछते हैं, "खाना कितनी देर में खायेंगी ?"

घ महाशय अपने कर्म में नींद अधिक मात्रा में लिखाकर लाये थे । आँखें खोले किसी ने उन्हें लेटा नहीं देखा । आफिस मे भी साहब बाहर तो नींद आँखों के अन्दर कुछ लोगों का

कहना है कि आप चलते-चलते भी सो लेते हैं। जो भी हो, इतना तो सच है कि दिन ढलने के बाद घ को किसी ने घर से बाहर नहीं देखा।

शादी हुई तो श्रीमती संगीत-विशारदा निकली। उनका घर अब तबला और तानपूरों की दुकान दिखने लगी। महोदय घ अब जितना संभव होता घर से बाहर रहते। एक बार पुलिस आवारगी में पकड़ लेगई तो घर जल्दी आने लगे। घर पर रहते देर रात तक दरवाजे पर पड़ौसियों से अपने दुर्भाग्य का रोना रोते और सो जाते।

अभ्यास समाप्त होने पर श्रीमती अन्दर घसीट ले जातीं।

इस विषम परिस्थिति में कभी-कभी घ की आँखों से आँसू ढुलक पड़ता। श्रीमती जी का संगीत उनकी आँख की किरकिरी बन गया था।

वास्तव में संसार में शादी के कारण अज्ञात रूप से भयंकर परिवर्तन होते रहते हैं। शादी के कारण किसी का पढ़ना छूटता है तो किसी का लिखना, किसी का खाना हराम हो जाता है तो किसी का सोना, किसी के लिये घर जेल बन जाता है तो किसी के लिये नरक, अनेक कवि और लेखक शादी के बाद अपनी कलम को नया मोड़ प्रदान करते हैं और वे साहित्य-सर्जन के स्थान पर बजट निर्माण में दत्तचित्त हो जाते हैं। प्रायः शादी के बाद चित्रकार कूची छोड़कर कुची धारणा कर लेता है।

स्वयं हमने जब साहस कर अपनी मंगेतर को प्रेम भरा पत्र लिखा तो उत्तर आया, "प्राणनाथ! विश्वास कीजिये, मैं आपके जीवन-मरण में साथ रहूँगी।"

हमने लौटती डाक से श्रीमती जी की गलतफहमी दूर की, "ईश्वर की कृपा से मुझ कोई दुख नहीं है, जीवन प्रिय है

"लेकिन मैं तो शादी के बाद की बात कर रही थी" मंगेतर के उत्तर का सारांश था।

संक्षेप में सार यही कि शादी जीवन की अनिवार्य दुर्घटना है। लोग पाणि-ग्रहण संस्कार कहते हैं। हमारा निश्चित अभिमत है कि दो पहलवान जीवन-अखाड़े में उतरते ही हाथ मिलाते हैं और प्रायः पति महोदय ही चारों खाने चित्त आते हैं। पत्नी केवल एक बार (विवाह पर विदा होते समय) रोती है किन्तु पति जीवन भर टिसुये बहाने का अभ्यास करता है।

— ०



जैसे हमारी माँ मर गई हो

चिलम्भरा प्रज्ञा : अभीष्ट प्राप्ति का अमोघ साधन

ऋतम्भरा प्रज्ञा का जो स्थान आध्यात्मिक क्षेत्र में है, व्याव-रिक जगत में वही स्थान चिलम्भरा-प्रज्ञा का है। वास्तव मे चिलम्भरा प्रज्ञा प्राचीन भृतिवाद का अनुनय विनय एवं दैन्य भरा वह अर्वाचीन रूप है जो अधिकारी को उसकी अनिच्छानुसार

या इच्छानुकूल विवश कर देता है कि प्रार्थी को उसका अभीष्ट प्रदान करे। रिश्वत और चिलम्भरा प्रज्ञा में वही अन्तर है जो बैरंग लिफाफे और रजिस्टर्ड लैटर में होता है। मुख्य रूप से अन्तर निम्न है—

१—रिश्वत देने वाला अधिकारी से अपरिचित भी रह सकता है किन्तु चिलम्भरा प्रज्ञा प्रयोगी अधिकारी के निकट सम्पर्क में एक निश्चित अवधि तक रहता है। यह निश्चित अवधि धोती धोने से लेकर डाक्टरेट प्राप्त करने तक बिखरी हुई है। यों चिलम्भरा प्रज्ञा-विशेषज्ञ इस अवधि को लक्ष्यानुसार जीवन भर खींच सकते हैं। यहाँ तक कि पद-च्युत होने पर भी चिलम्भरा प्रज्ञा जारी रह सकती है, क्योंकि—

इहै आस अटक्यो रहै, अलि गुलाब के मूल।[1]
अइहै बहुरि बसन्त ऋतु इन डारिन वे फूल॥

२—रिश्वत देने वाले का गर्वीला होना संभव है परन्तु चिलम्भरा प्रज्ञा-प्रयोगी गर्दन झुकाकर 'हें हें', 'जी साहब' 'यस्सर' कह कर खीसें निपोरा करता है। निम्न से निम्न (छोटे से छोटा) कार्य करने को उसके कर-यंत्र आतुर रहते हैं।

३—रिश्वतदाता को अधिकारी के घर या घर वालों से वास्ता रहे, आवश्यक नहीं है। परन्तु चिलम्भरा प्रज्ञा का दृढ़ आधार ही परिवार-सेवा है।

४—रिश्वत का प्रभाव दिमाग से प्रवेश करता है और दिमाग में ही सीमित रहता है जबकि चिलम्भरा प्रज्ञा का प्रवेश पैर के अँगूठे से होता है और हृदय तक निश्चित रूप से पहुँचता है। दिमाग तक पहुँचना अनिवार्य या आवश्यक नहीं है।

५—रिश्वत का परिणाम अनिश्चित होता है जबकि चिलम्भरा प्रज्ञा का अचूक फल होता है।

---

१ चरणों में।

सारांश यह कि रिश्वत और चिलम्भरा प्रज्ञा में आधार, साधन, प्रेरणा और परिणाम सभी दृष्टि से अन्तर है। दो उदाहरणों से यह अन्तर स्पष्ट हो जायेगा।

मानलो अधिकारी सिनेमा जाता है तो रिश्वतदाता जहाँ कार, टिकट और चायपान की व्यवस्था करेगा वहाँ चिलम्भरा प्रज्ञा प्रयोगी अधिकारी के पैसों से ही हाल में प्रवेश करेगा किन्तु बीच में यदि बच्चा रोयेगा तो वही उसे बाहर ले जाकर बहला-येगा। अधिकारी को चित्र देखने में कष्ट न हो, यह दोनों ही कोशिश करेंगे किन्तु रिश्वतदाता जहाँ मैनेजर या आर्गनाइजर का काम करेगा वहाँ चिलम्भरा प्रज्ञा प्रयोगी—'योर मोस्ट ओबी डियेन्ट सर्वेन्ट' का।

दूसरा उदाहरण लो। अधिकारी की वर्षगाँठ पर जहाँ रिश्वतदाता कोई बहुमूल्य वस्तु भेंट करेगा वहाँ चिलम्भरा प्रज्ञा प्रयोगी उसी वस्तु को ले जाकर अधिकारी को पेश करेगा। रिश्वतदाता जहाँ अधिकारी से हाथ मिलायेगा वहाँ चिलम्भरा-प्रज्ञा प्रयोगी खीसे निपोरता हुआ हाथ जोड़े—'और कोई आज्ञा सरकार' की मुद्रा में खड़ा रहेगा। रिश्वतदाता जहाँ अतिथि समझा जायेगा वहाँ चिलम्भरा प्रज्ञा प्रयोगी इस कोशिश में रहेगा कि अतिथि उसे परिवार का ही महत्वपूर्ण सदस्य समझे और अधिकारी उसे परिवार का जरूरी सेवक।

चिलम्भरा प्रज्ञा वह नुस्खा है जिसे प्रयोग करने वाला यदि धैर्यवान है तो अवश्य लाभप्रद होगा। जिस प्रकार प्रत्येक रोग में अमृतधारा प्रयोग की जासकती है उसी प्रकार हर लक्ष्य प्राप्ति में चिलम्भरा प्रज्ञा का प्रयोग किया जा सकता है।

चिलम्भरा प्रज्ञा एक लम्बी किन्तु सफल साधना है। चिलम भरने का यह अर्थ नहीं है कि चिलम उलटी, ताजा पानी किया, चिलम में गुल लगाई, तमाकू भरा और तवा लगाकर आँच भरदी। चिलम भरना हुक्का भरने का प्रतीक है और

हुक्का भरना सरल काम नहीं है। आँच, पानी, तमाकू, सफाई, समय आदि का ज्ञान आवश्यक है। संक्षेप में हुक्का भरने वाला खान्दानी होता है या जाति विशेष हुक्का भरने में निपुण होती है। गाँवों में नाई को यह सम्मान प्राप्त है। हमारा तात्पर्य यह है कि अधिकारी की समस्त दिनचर्या और पसन्द से परिचित होना चाहिये। चिलम्भरा प्रज्ञा प्रयोग का स्थल घर होता है। हर स्थान पर चिलम में दम नहीं लगाया जा सकता, न सिगरेट की भाँति हर स्थान पर सुलभ ही होती है। सिगरेट का व्यक्तित्व चिलम के सामने उसी प्रकार हलका और कमजोर है जिस प्रकार छुईमुई आधुनिका का जाटनी के सामने।

चिलम्भरा प्रज्ञा क्रमशः तीन पद्धतियों में पूर्ण होती है। चरण-स्पर्श, गृह-सेवा और यस्सर पद्धति। अधिकारी से नजर मिलते ही मुस्कराहट के साथ कर-कमल जुड़ते हैं और अधिकारी के चरणों की दिशा में चल पड़ते हैं। आगे की क्रिया तीन धाराओं में विभक्त है। हाथों का अधिकारी के चरणों से स्पर्श करना, चरण-स्पर्श कर अपने मस्तक तक जाना या अपने पूर्व स्थान पर आकर पुनः जुड़ जाना एवं अधिकारी द्वारा बाधा (कमर से पकड़ 'बस बस' करते हुये रोकना और कभी-कभी वक्ष से लगाने का अभिनय करना) उपस्थित करना।

चरण-स्पर्श पद्धति का प्रभाव बाजार यानी भीड़ के सामने प्रयोग करने पर अधिक पड़ता है। एकान्त में अधिकारी इस पद्धति की अधिक परवाह नहीं करता किन्तु अन्य प्रतिष्ठित लोगों के सामने इस पद्धति को प्रयोग करने के लिये अवसर प्रदान करता है।

चरण-स्पर्श पद्धति सम्पूर्ण लक्ष्य मार्ग पर सफलतापूर्वक प्रयोग की जाती है। लक्ष्य-प्राप्ति के आरंभ और अन्त में इसका प्रयोग अनिवार्य होता है। जैसे अधिकारी से परिचय, थीसिस का विषय, स्नाप्सैस आदि स्वीकृत कराने से पूर्व, बिना इस पद्धति

के काम नहीं चल सकता। मंजिल से एक कदम पहले भी यह पद्धति सफलता पूर्वक प्रयोग की जानी चाहिये। जैसे पी० एच० डी० के इण्टरव्यू में विशेषज्ञ ने पूछा, "आपका नाम ?"

"(मेज के नीचे से प्रश्नकर्ता के चरण स्पर्श कर मस्तक से लगाते हुये) जी, मंगाराम।"

"अलीगढ़ से आये हैं।"

"(उसी प्रकार चरण स्पर्श कर मस्तक से लगाते हुये) जी,"

"थीसिस का क्या विषय है ?"

"(उसी प्रकार चरण स्पर्श कर मस्तक से लगाते हुये) जी, आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य।"

"जा सकते हो।"

"(इस बार उठकर अधिकारी के पार्श्व में आ चरण स्पर्श कर मस्तक से लगाते हुये) जी, जो आज्ञा"

और इस प्रकार मंगाराम का बिना बुद्धि-परीक्षा दिये सफल इण्टरव्यू रहा और पी० एच० डी० भी मिली।

गृहसेवा पद्धति चिलम्भरा प्रज्ञा का सर्वाधिक प्रभविष्णु मध्य भाग है। इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। अधिकारी के समूचे परिवार, रिश्तेदार और पालतू तथा फालतू जानवरों तक की सेवा इस पद्धति को परिधि में आजाती है। जैसे पी० एच० डी० मिलने की तिथि-घोषणा तक इस पद्धति का अपनाना।

'यस्सर पद्धति' लक्ष्य प्राप्ति के पश्चात् अधिकारी से संबंध निर्वाह किये जाने के प्रमुख काम आती है। 'कभी काम पड़ेगा' इस संभावना से ही इस पद्धति का अधिक प्रयोग होता है। जैसे कन्फर्म कराना या डाक्टरेट के बाद अच्छा स्थान दिलवाने की आशा में। यस्सर पद्धति का व्यावहारिक उदाहरण निम्न है—

अधिकारी—आज सरदी अधिक है।

साधक—जी हाँ, बहुत। इतनी सर्दी पहले कभी नहीं पड़ी।

अधिकारी—वैसे कल से कम है।

साधक—जी हाँ, आज तो धूप भी निकली है।

अथवा

"आज के छात्र बड़े शैतान होते हैं।"

"यस्सर, गुरु को तो खरीदा हुआ गुलाम समझते हैं। पहली सी गुरुभक्ति तो सपने की वस्तु रह गई है।"

"वैसे यह उमर शैतानी की ही होती है।"

"यस्सर, फिर तो जीवन-संग्राम में गंभीर उत्तर दायित्व आ पड़ते हैं। इस वक्त जो करलें थोड़ा। हम भी कम नहीं थे, सर।"

यह स्मरण रखना चाहिये कि चरण-स्पर्श पद्धति एवं यस्सर पद्धति, हर रोग में गर्म पानी और उपवास की भाँति, लक्ष्य प्राप्ति में सहायक होते हैं। कहना चाहिये कि गृह-सेवा-पद्धति चिलम्भरा प्रज्ञा-वृक्ष का तना है तो चरण-स्पर्श पद्धति एवं यस्सर पद्धति उस वृक्ष की मूल और शाखा-प्रशाखायें हैं, जो चारों ओर से उस तने को घेरे रहती हैं।

अब थोड़े से दृष्टान्तों से सम्पूर्ण चिलम्भरा प्रज्ञा का प्रयोग-चातुर्य तथा अचूक परिणाम स्पष्ट हो जायेगा।

क महोदय एक इन्टर कालेज में क्लर्क थे। उनका सिद्धान्त था कि वे प्रिंसिपल के घर को आफिस समझते और बजाय फाइल ठीक करने या फीस लेने के प्रिंसिपल के घर का आटा पिसाते, कोयला लाते या खाट की मरम्मत कराते थे। गेहूँ कितने लाने हैं, लकड़ी कितने दिनों चल जायेगी, बच्चों की कापियाँ भर गई हैं, सुबह पालक का साग बनेगा और शाम को आलू का रायता, धनियाँ और मिर्चें माँग कर ही लानी हैं, प्रिंसिपल के स्वसुर की दवा के लिये गाय का ताजा मूत्र लाना है, आदि चिन्ताएँ उन्हें अपने घर भी घेरे रहतीं और वे खुशी-खुशी उन चिन्ताओं को दूर करते

यह नुस्खा इतना सफल रहा कि प्रिंसिपलों की कृपा से वे कालेज बदलते गये और आज एक पोस्टग्रेजुएट कालेज में प्रवक्ता-पद पर सुशोभित हैं। भगवान ही जाने वे क्लास किस समय लेते हैं, क्योंकि उनकी उपस्थिति या अनुपस्थिति का किसी को पता नहीं चलता। हाँ, प्रिन्सिपल के घर उनके आने के पूर्व जो घरेलू नौकर था, वह अब नहीं है।

ख महाशय तनिक लेट आये तो नये बॉस ने एक्सप्लेनेशन काल किया। ख ने तुरन्त कहा, 'सर, जरा स्नान भजन ध्यान में देर हो गई।"

"इन चिल्ला जाड़ों में भी भजन ध्यान करते हो ?"

"यस्सर, भजन ध्यान मेरे प्राण हैं। कल से देर नहीं होगी"

"डान्ट वरी, डान्ट वरी, भजन ध्यान मत छोड़ना"

और ख महाशय का तीर निशाने पर लगा। नये साहब कोट पेन्ट पर भी सीधा तिलक लगाते थे। वे बड़े भजनानंदी और कीर्तनबाज थे। आये दिन उनकी कोठी पर कीर्तन होता रहता। अब ख को आफिस में कोई काम न था। साहब के घर कब कीर्तन होगा, कब सत्यनारायण की कथा होगी, कौन पंडित आयेगा, हिंडोला कैसे सजेगा, अखण्ड कीर्तन में रात के १२ बजे से तीन बजे तक किस की ड्यूटी रहेगी, अमुक साधु के आज दर्शन करने जाना है आदि आदि उसकी आफिस ड्यूटी के अन्तर्गत आ गये।

इस कार्यक्रम से ख तो खुश थे ही, साहब भी प्रसन्न थे और कर्तव्य परायणता के लिये ख का उदाहरण दिया करते।

ग महोदय अपने बॉस की सुकन्याओं के भिन्न भिन्न पोजों में चित्र खींचते रहते। जब कोई असाधारण चित्र उतार कर देते तो सुकन्यायें किसी न किसी लाभ की सूचना देतीं

एक दिन हमने एक विचित्र दृश्य देखा। हमारे एक प्रवक्ता मित्र बीच बाजार भैंस के पड्डे को खींचे ला रहे हैं। हमें हँसी आ गई, "यह किसी नाटक के दृश्य का रिहर्सल है क्या ?"

"यार, भाग्य ने साथ दे दिया है। घर चलो मिठाई खिलाऊँगा" रस्सी कसते हुये मित्र ने मुस्कराया।

घर पर हमें उसने समझाया, "पी-एच० डी० करने वाले हम चार हैं। हमारे एकमात्र गाइड ने भैंस पाली। हम चारों भैंस की सेवा में सपूतों की भाँति लगे रहते। भैंस ने पड्डा दिया और कुछ दिनों बाद मर गई। गाइड साहब बड़े दुखी हुये। यूनिवर्सिटी भी नहीं गये।......"

"शोक-प्रस्ताव पास कर, दिवंगता की आत्मा की शाँति के लिये दो मिनट का मौन नहीं रखा ?"

"टोको मत, सुनते जाओ। हम चारों के चेहरे ऐसे लटक गये कि हमारी माँ मर गई हो। कोशिश करने पर भी जब किसी की आँख में आँसू नहीं आये तो मैंने सच ही अपनी माँ की याद की जो मुझे बचपन में छोड़कर चल बसीं थी। आखिर मेरी हिचकियाँ बँध गई और आँसू बह निकले।

पड्डे को पालने के लिये अब लाटरी डालने की आवश्यकता नही थी। पड्डे के प्रति मेरे साथियों के भ्रातृ-प्रेम पर भैंस के प्रति मेरा मातृ-प्रेम विजयी हुआ, गाइड बड़े खुश हुये और पड्डे को मेरे हवाले कर दिया। तीनों साथी पहले ही मेरी अश्रु धार को देख आश्चर्य में डूबे थे। अब ऐसे उदास और निराश हो गये जैसे मैं उनके मूर्त्त सौभाग्य का अपहरण कर लाया हूँ।"

"लाभ ?"

'एक दम लक्ष्मी के वाहन हो। पी-एच० डी० मिलने की गारण्टी है यह पड्डा। सेवा करूँगा तो मेवा मिलेगी।"

मेवा नही गोबर मिलेगा व्यय नही होगा क्या ?

"यार, इस सेवा में खर्चा तो बैठता नहीं। इस घटना को अपवाद ही समझो। इसे बेच दूँगा और कहता रहूँगा कि खूब खाता है और पट्ठा हो रहा है। जब माँगेंगे, खरीद कर दे आऊँगा।"

"ताकि उसे बेचा जा सके। काश कि यह पड्डा की जगह पड़िया होती" हमने पड्डे के सिर पर हाथ फेरा।

"उससे क्या होता ?" मित्र ने जिज्ञासा प्रकट की।

"एक दिन गाइड को अपने भाँनेजे या भाँनजी पैदा होने की खबर भी देते" हमने कहा तो मित्र हँसे, "जरा सी देर में तैराक हो गये।"

"तैराक नहीं हैं, वैसे ही कह दिया। कुछ गुर हमें भी बताओ।"

"गुर क्या ? जिससे काम निकालना हो उसके घर पहुँचो और यथाशीघ्र सेवा में लग जाओ। सेवा न मिले तो तलाश करलो। गाइड की श्रीमती जी के पैर में मोच आगई तो सिकाई मालिश का एक्सपर्ट बन दो सप्ताह सेवा की मैंने" मित्र ने सगर्व बताया," कितने ही प्रोफेसर इन्हीं गाइड के बच्चों को झुंझना बजाना सिखाते पी० एच० डी० हो गये।"

और उन्होंने श्रीमान क के जैसे कारनामे सुना दिये।

चिलमभरा प्रजा में अधिकारी की रुचि का बड़ा ध्यान रखना पड़ता है। यदि अधिकारी किसी वाद या पार्टी से संबंधित है तो आप भी उसी वाद या पार्टी के आदमी बन जाइये। उनके मित्रों को अपना मित्र और उनके दुश्मनों को अपना दुश्मन समझो: कोई चिन्ता नहीं यदि इस सिद्धान्त से अपने ही सुहृद दुश्मन समझे जायें। अधिकारी की रुचि की ही ड्रेस पहिनिये। मूँछों का कट भी वही होना चाहिये जो अधिकारी की मूँछों का है। अपने साथियों के सामने भी यदि आप स्वाभिमान को छोड़, अधिकारी के आगे दुम हिला सके तो लक्ष्य पाने में विलम्ब न

होगा। साहब कोट उतार रहे हों तो थाम लीजिये। कार पर सवार हो रहो हों, तो दरवाजा खोल दीजिये।

सच बात तो यह है कि चिलम्भरा प्रज्ञा चिरकाल से लक्ष्य प्राप्ति का साधन रहा है। संभव है रूप कुछ और हो। भविष्य में भी स्वरूप बदल सकता है किन्तु चिलम्भरा प्रज्ञा का प्रयोग वसन्तकुसमाकर की भाँति प्राणपद रहता है, इसमें सन्देह नहीं।

चिलम्भरा प्रज्ञा-विशेषज्ञ एक मित्र ने हमें उपदेश दिया, "वर्मा जी के अन्डर में पी-एच० डी० कर रहे हो? ड्राइंग रूम में उनका एक चित्र लगाकर ताजी माला पहनादो, और उन्हें किसी बहाने से घर लेजाकर दिखादो। जब भी अवसर आये वर्मा जी का भयंकर प्रशंसात्मक परिचय दो। उनका भाषण हो तो अनेक श्रोताओं को लेजाकर प्रशंसा में तालियाँ बजवाओ। जो भी पुस्तक लिखो, उन्हें समर्पित करो। उन्हीं से भूमिका लिखवाओ। अच्छा हो एकाध पुस्तक पर उन्हीं का नाम डाल दो। मैंने अनेक लेख उन्हीं के नाम से लिखे थे। जिस पुस्तक पर उन्हें सरकारी पुरस्कार मिला, मेरी ही लिखी हुई थी। मैंने ही उसकी विभिन्न नामों से कई पत्रों में प्रशंसात्मक आलोचना लिखी। खेद तो यह रहा कि ना तो उस पुस्तक की पुरस्कार राशि ही मुझे मिली और न रायल्टी ही मुझे मिलती है। खैर, इतना याद रखो—

चिलम भर गाइड की ऐ अकबर !
इलम से पी-एच० डी० नहीं मिलती ॥"

—o—



टिकट—हरण

बीसवीं सदी के अप्रतिम वीर मिस्टर पी० के० राणा

"इस सीट से उठिये, वर्ना···" कहते हुये उस छबीले नौजवान ने अपने रेशमी घुँघराले केशों को एक सुकुमार झटका दिया और पहले से ही मुड़ी रेडीमेड नाइलान-बुशशर्ट की बाँहों को और भी एक घुमाव दिया, जैसे कोई कोमल सा वार करने जा रहा हो।

"वर्ना, वर्ना क्या कर लोगे जी" उस परम स्वस्थ गंवार ने अपना गाढ़े का कुर्ता ऊँचा किया और लम्बे लम्बे बालों वाली मोटी भुजा प्रकट कर दी

सम्पूर्ण डिब्बा इस भिड़न्त को देखने का इच्छुक था। सीट उस छबीले नौजवान की थी जो स्टेशन पर, रेल के रुकते ही चुस्की लेने उतर गया था। जीभ चटकारता जैसे ही अपने स्थान पर लौटा तो पहलवान को पसरा पाया।

"वर्ना, वर्ना हम किसी और सीट पर बैठ जायँगे" छबीले नौजवान ने जनाने से छोटे-छोटे बारीक चमकीले दाँतों को निकालते हुये भिड़न्त का आरंभ होने से पूर्व ही उपसंहार कर दिया। डिब्बा ठहाकों से भर उठा।

ये ही छबीले नौजवान थे मिस्टर पी० के० राणा जो विरोधी को कमजोर (अर्थात् जब अपने साथ आठ दस और साथी हों) देखकर स्वयं में भारी स्वाभिमान का अनुभव करते हैं, नहीं तो अपमान को बर्फ के पानी सा पीने को तत्पर रहते हैं।

× × × ×

शब्द और वाक्य उस खान्दानी वकील या नेता की भाँति होते हैं जो बदलते समय के साथ अपने कथन (अर्थ) के तात्पर्य को सैक्स की तरह बदलने में विधाता को मात देते हैं। उदाहरण के लिये यदि कोई यह डींग मारे कि 'मैं हजारों आदमियों को अपने हाथ की रोटी खिलाता हूँ' तो पुराने जमाने को तो गोली मारिये, आज के जमाने का स्पष्ट अर्थ है कि वक्ता महोदय किसी बड़े होटल में रसोइये हैं। यदि यह कहें कि 'अपने हाथ से रोटी खिलाता हूँ' तो हजरत रसोइये न होकर बेयरा हैं। इसी प्रकार जो युवक यह हाँके कि उसके बाप एक हाथ से चलतीं मोटरों को रोक देते हैं, आप समझ लीजिये कि बरखुरदार किसी राममूर्ति के नहीं बल्कि किसी चौराहे के सिपाही के कुलदीपक हैं। और "मेरे बाप दौड़ती रेल को इशारे मात्र से रोक देते हैं" वाक्य कोई भी स्टेशन मास्टर की सन्तान उन बरखुरदार से न्याय पूर्वक कह सकती है।

'वीर' शब्द के अर्थ भी 'गुरु' की तरह बदल गये हैं। बीसवीं सदी के वीर को तन्दुरुस्त रहने की कतई आवश्यकता नहीं है। प्रायः बीमार रहकर जिन्दा रहने में ही उसकी बहादुरी है। पहले के वीर लम्बी और उठी हुई मूंछों पर ताव दिया करते थे जब कि आज के वीर मूँछों की जड़ों पर उँगली भी नहीं फिरा सकते। कारण, पैसे दे, सिर झुका, नाई से उन्हें पहले ही मुँड़वा लेते हैं। लीजिये, आप यों नहीं समझेंगे। वे आगये सामने से रेल के डिब्बे के सुपरिचित मिस्टर पी० के० राणा बिना हैंडिल थामे, भीड़ में सरपट साइकिल को दौड़ाये। घण्टी निरन्तर हिनहिना रही है।

वीरोचित भूषा, चूड़ीदार पाजामानुमा पेन्ट और पार दर्शक बुर्शट को उतार दिया जाय तो मि० राणा की पसलियाँ खरबूजे की फाँक सी गिनी जा सकती हैं। हाथ पैर जैसे तराजू के डंडे, कोहनी और घुटने काँटे की तरह चुभने वाले। शरीर के सभी भाग समान भाव से दुर्बल किन्तु आँखें विशेष रूप से। यों निशाना रंगीन चश्मे को पार कर अचूक बैठता है और प्रेम-पत्र जैसे महत्वपूर्ण डाकूमेन्ट्स सरलता से पढ़े जा सकते हैं। कुल मिलाकर यों समझिये कि निर्वस्त्र कर यदि श्वेत बिस्तर पर फेंक दिये जायें तो ड्राइंग पेपर पर रफ स्केच से मालूम देंगे।

मि० पी० के० राणा में प्राचीन वीर के सभी लक्षण घटते हैं। जैसे आप दुश्मन को चबाने और खून पीने के बजाय पान चबाते और तुरी से सुर्ख शरबत पीते हैं। दुश्मनों के घरों को जलाने फूँकने के स्थान पर सिगरेट जलाते और तिल्ली-स्थान से काफी ऊपर रहने वाले कलेजे को फूँकते हैं। गदा या भाला फेंकने के स्थान पर एक मात्र नाजुक दिल के हजारों टुकड़े कर हर दिशा में फेंक देते हैं। अरि-दल के दुर्गम कोट विजय करने के बजाय रंगीन खूबसूरत फोटो पर छापा मारते हैं नजरों के

तीर के सामने अर्जुन के नाराच फूल जान पड़ते हैं। एक बार आपने एक वासन्ती कोट पर पीछे से नयन-तीर के साथ वाक्य-तरकस भी धीमे से छोड़ दिया, "मैं आपसे प्रेम करता हूँ।"

वासन्ती कोट पलटा और एक कदम आगे बढ़ा, "आओ तो हम दोनों विवाह करलें।"

किन्तु तब तक वासन्ती कोट के अन्दर का घटाटोप फैलाव देखकर मि० पी० के० राणा के मुखारविन्द पर चेचक के समान पसीना झलक आया। हकलाते, घबड़ाते बोले, "जी, आपने तो विषय ही बदल दिया।"

वासन्ती कोट अपनी पूर्ववत् मस्तानी चाल से खाँसता मठारता आगे बढ़ गया। तभी राणा का एक और साथी वीर आ धमका, "साले, देख तो लिया कर। हलके हाथ से भी सहलाती तो बीस जगह से चूड़ी सा चटक जाता। कहाँ वह भैंस की नाक और कहाँ तू काँटा विहीन गुलाब की ताजा कली।"

इन मि० पी० के० राणा के ड्राइंग रूम में महाराणाप्रताप का चित्र टँगा है जिनको आप आदर्श वीर मानते हैं। कभी-कभी चित्र में यौवन भरी मूँछों को देख ताव आता है किन्तु हाथ को बजाय ओठों के, बिल्क्रीम विलसित मुलायम बालों पर ले जाते है। यों आपको क्रोध आता है, भुजाएं फड़कती हैं, आँखों से चिनगारियाँ निकलती हैं, मूँछें भी उमठने को मिलती हैं किन्तु ये सब स्टेज पर नाटकों में या स्टूडियों में कलापूर्ण निर्मित चित्र में होता है।

हाँ, अभिनय का बीसवीं सदी के वीरों के जीवन में विशेष स्थान है। अभी उस दिन की बात है कि राणा घबड़ाते से प्लेटफार्म पर उतरे तो गेट पर खड़े एक टिकट चैकर ने वस्तुस्थिति को ताड़ा। उसके कदम मि० पी० के० की ओर बढ़े तो मि० पी० के० के कदम प्लेटफार्म से उतर कर पटरियों की ओर, जहाँ आगे जाकर सड़क पर निकला जा सकता था शनै शनै.

चाल तेज हुई और धीमी दौड़ में बदल गई। लगभग सौ गज के फासले पर मि० पी० के० पकड़े गये। टिकट बाबू ने हाँफते हुये, विजयोल्लास में चुनौती दी, "टिकट प्लीज।"

"यह लीजिये" हाँफते हुये मि० पी० के० ने टिकट सौंप दी।

"फिर भागे क्यों थे ?"

"जी, माफ कीजिये, मेरा दोस्त बेटिकट था। अब तक वह वीर कभी का पार हो गया होगा" अब मि० राणा के विजयोल्लास की बारी थी।

बीसवीं सदी के वीरोचित जीवन का प्रमुख भाग सिनेमा के साये में कटता है। आवारा कट पेंट और दिलीपकट बाल ही नहीं रखे जाते बल्कि अनेक प्रकार के रिकार्ड भी ये वीर तोड़ते हैं। जैसे नवीं कक्षा तक मि० पी० के० राणा का रिकार्ड पाँचसौ चलचित्र देखने का है। सबसे कम उम्र में सबसे अधिक चित्र देखने में आप रनर-अप हैं। एक ही चित्र को अनेक बार देखने में मि० पी० के० का स्थान तीसरा है। इन्होंने किस्मत को जिसमें अशोककुमार और मुम्ताजशान्ति थे, एक सौ पचपन बार देखा है। इसी प्रकार लगातार देखने, प्रतिदिन चारों शो देखने, सदैव सैकिण्ड शो या मैटिनी शो देखने, आदि प्रतियोगिताओं में मि० पी० के० राणा सोत्साह भाग लेते हैं। हारने पर आप घबड़ाते नहीं बल्कि अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने की कोशिश में रहते हैं। मि० पी० के० राणा बता सकते है कि सुरैया, लता मंगेशकर और आशा भोंसले की आवाज में क्या अन्तर है। नूरजहाँ की आवाज भी इन्होंने सुनी है। उसकी अनमोल घड़ी, जुगनू और गाँव की गोरी के गाने अभी भी सुना सकते हैं। रफी, तलत, और मुकेश की आवाज को दूर से पहचानते हैं। वे यह भी जानते हैं कि राजकपूर सदा मुकेश की आवाज उधार लेता है। उन्हें इल्म है कि अशोककुमार को अछूत कन्या से, मोतीलाल को शादी से, करणदीवान को रतन से

और दिलीपकुमार को मिलन से ख्याति मिली है। रतन की हीरोइन स्वर्णलता, अब अपने पति नजीर के साथ, जो माँ बाप, बामक—अजरा और लैला-मजनू में उसके साथ हीरो थे, पाकिस्तान भाग गई है। वे यह कभी नहीं भूलते कि नरगिस ने सबसे पहले अपनी माँ जद्दन बाई के साथ सोहराब मोदी द्वारा निर्देशित 'खून का खून' में काम किया था। राजकपूर के साथ बावरे नयन की हीरोइन छब्बीस वर्षीया गीताबाली ही अब राजकपूर के छोटे भाई बाईस वर्षीय शम्मीकपूर की पत्नी है। वे गारंटी करते हैं कि महबूब की पुरानी फिल्म औरत अब की मदरइंडिया से बहतर थी। उसमें याकूब ने बिरजू का अभिनय सुनीलदत्त से अच्छा किया था। सुरेन्द्र राजेन्द्रकुमार से कहीं बेटर था। औरत की हीरोइन सरदार अख्तर अब महबूब की श्रीमती हैं। एक बार मि० पी० के० राणा ने भरी महफिल में एक प्रसिद्ध फिल्म पत्रिका के एक चित्र के शीर्षक को चुनौती दी थी। शेष लोगों को मानना ही पड़ा कि उक्त चित्र का शीर्षक 'नर्तकी कुक्कू' होना चाहिये था न कि 'नर्तकी हेलन'। कितने ही चित्रों के ड्रामा, वे गाने सहित आवाज बदल-बदल कर पूरा का पूरा सुना सकते हैं, आदि-आदि। सोते में भी, वे किसी के भी घर में हों, एक क्षण में रेडियो सीलोन लगा सकते हैं। हाँ, हालिवुड के मामले में वे अभी कच्चे हैं। केवल ब्रान्डो, मुनरो, एलिजाबेथ टेलर, रिताहेवर्थ और बाबहोप या चार्ली चैपलिन के नाम जानते हैं और किसी प्रकार काम चलाते हैं।

वास्तव में बात यह है कि आधुनिक वीरता की कसौटी थर्डक्लास टिकट से ही आरम्भ होती है। जब सिपाहियों के तेल पिये नीमन डंडे की बिना परवाह किये, अपार भीड़ के अनियंत्रित समन्दर को मछली के समान तैरकर, टिकट रूपी प्रवेश सुन्दरी को मुट्ठी में भींच कर लाया जाता है। इसको प्राचीन युग के कन्या-हरण से कम नहीं समझना चाहिये, जब किसी भी स्वयंवर में शेष सभी राजा अपहरण कर्त्ता का समस्त

विरोध करते थे। एक बार मि० पी० के० राणा ने फिल्म अनारकली के अवसर पर टिकट घर पर विक्रेता से सत्य का उद्घाटन करते हुये कहा था, "कहीं मेरा स्वास्थ्य ठीक न रहा आये, मेरी आँखों की ज्योति इसी तरह न बनी रहे, मेरा समय नष्ट कर, ले पैसे और टिकट देकर मेरा चरित्र बिगाड़। देख तो, इस सब के लिये मैंने कितनी कोशिश की है। मेरी नई कमीज फट गई है और कोहनी से खून बह रहा है।"

खेलों का वीरों के जीवन से हमेशा सम्बन्ध रहा है। प्राचीन वीरों के खेल जैसे शेर से भिड़न्त, चीते का शिकार, जंगली सूअर से दोहाथ, नाम ही आधुनिक वीरों में म्यादी बुखार लाने को पर्याप्त हैं : बैडमिन्टन, टैबुलटेनिस तथा ताश आधुनिक वीरों के लोकप्रिय खेल हैं। मछली के शिकार का भी शौक कह-कर धैर्यपूर्वक सामना करते हैं। कबड्डी में हड्डी टूटने का डर रहता है, और दौड़ना बहसीपन है अतः मि० पी० के० राणा का प्रिय गेम कैरम है। ब्रिज और ट्वैन्टीनाइन में स्वयं को चैम्पियन कहते हैं।

मि० पी० के० राणा खेलों की नस-नस से परिचत है, कहिये कि विश्वकोश हैं। वे यह जानते हैं कि रोम ओलम्पिक में रूस देश ने सर्वाधिक पदक प्राप्त किये थे। भारत सन् २८ से रखने वाले हाकी-स्वर्णपदक को पाकिस्तान से हार बैठा। मिलिखा ४०० मीटर की दौड़ में चौथा रहा। किस खेल में कौन खिलाड़ी किस नम्बर पर रहा और उसने प्राचीन ओलम्पिक रिकार्ड तोड़ा या नहीं, ये सब एक सैकिन्ड में बताना मि० पी० के० राणा के लिये एक दम सरल है। वे जानते हैं कि लौन टैनिस डेविस कप के चेलैंज राउन्ड में आस्ट्रेलिया ने इटली को ४–१ से हरा दिया। बिम्बलडन लौन टेनिस नील फ्रेशर ने जीती। भारत का कृष्णन जो संसार के आठवें नम्बर का खिलाड़ी है, चिली के आयला को हराकर सेमिफाइनल तक पहुंच गया था लौन टेनिस का प्रोफे-

शनल चैम्पियन अमेरिका का गौन्जिल्स है। वे यह खट से बता देंगे कि डोनाल्ड बज ही ऐसा खिलाड़ी है जिसने १६३८ में बिम्बल्डन, अमेरिका, फ्रांस और आस्ट्रेलिया के चारों बड़े मैच जीते थे।

बैडमिण्टन के थौमस कप के चौथे राउन्ड में किस ने किस को हराया या टेबल टैनिस का विश्व-चैम्पियन पाँच वर्षों से जापान रहा है किन्तु इस वर्ष चीन के कोई खिलाड़ी हैं, ये मि० पी० के० राणा ही साथियों को बताते हैं. वे यह भी बतायेंगे कि भारत की टेबिल टैनिस की महिला चैम्पियन मीना पराण्डे हैं, पहिले सईदा सुल्ताना थी जो अब पाकिस्तान की चैम्पियन है। पुरुषों के चैम्पियन नन्दू नटेकर हैं। विलियम जोन्स ने १६५८ में विश्व बिलियर्ड चैम्पियन शिप जीती है। इंगलिश चैनल को पार करने वाले पहले भारतीय मिहिरसैन और आरती साहा हैं। आदि आदि··· ।

किसी एक खेल की शाखा के पत्ते पत्ते को आप जानते हैं। उदाहरण के लिये क्रिकेट के सभी प्रकार के रिकार्ड उन्हें याद है विकट पार्टनरशिप से लेकर बाउलिंग की हैट ट्रिक तक। वे बतायेंगे कि अभी तक अधिकतम रन वेस्ट इन्डीज के सोवर्स ने ३६५ नाट आउट बनाये हैं। सबसे अधिक विकट, एक इनिंग में, इंगलैंड के जिम लेकर ने लिये हैं। टैस्ट मैचों मे २००० रन और सौ विकट चटकाने वाले केवल चार खिलाड़ी हैं। इंगलैन्ड के रोड्स, आस्ट्रेलिया के कीथमिलर, भारत के वीनू मनकद और इंगलैण्ड के बेली। अभी तक टैस्ट मैचों की हैटट्रिक १५ ही हैं। जिनमें सबसे ताजी वेस्टइंडोज की, आस्ट्रेलिया के खिलाफ गिब्स की है।

प्राचीन वीरों का शौक जहाँ जंगली जानवरों की खाल और सींग एकत्र करना था वहाँ सोते कुत्ते से डरने वाले मि० पी० के० राणा को टिकट और सिगरेट के डिब्बे एकत्र करने की हाबी है

बीसवीं सदी के वीर का विद्यार्थी-जीवन अनेक वीर-गाथाओं से भरा रहता है। मि० पी० के० राणा भी छात्र जीवन में आधुनिक-वीरों की प्रथम पंक्ति में थे। जब स्ट्राइक के पक्ष मे भाषण देते थे तो आयोजनानुसार अनेक बार बेहोश हो जाया करते थे। प्रिन्सिपल के सामने जाने में आप कभी न हिचकिचाये और फीस माफ कराने आदि के केस साफ जीत के लाये। एक बार डाक्टर महोदय ने किसी विशेष बीमारी में १५ दिन के लिये भोजन और फलाहार बन्द कर दिया तो आपने छात्र-संघ के विधान को लेकर आमरण अनशन कर लोकप्रियता प्राप्त की थी और परम्परा के अनुसार आज तक जिन्दा हैं। लड़ाई झगड़ों में गार्ड की भाँति सबसे पीछे किन्तु चीखने, नारे लगाने और रिपोर्ट आदि ड्राफ्ट करने में सुई की नोक की तरह सबसे आगे रहते थे। पुस्तकालय में लाइब्रेरियन की प्रार्थना कभी न मानी और जोर-जोर से बातें करने में कभी न चूके। कभी-कभी ढोलक भी मेज पर बजाई किन्तु लाइब्रेरियन के हढ़ आदेश पर बन्द करनी पड़ी। मि० पी० के० राणा ने अनेक पुस्तकों के अध्याय के अध्याय गायब कर दिये पर लाइब्रेरियन और उसके सहयोगी कभी न पकड़ सके। इस पुस्तक-पृष्ठ-हरण-वीरता की चरम सीमा ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के ग्यारहवें वाल्यूम के १५० पृष्ठ उड़ा देना था। नकल-वीरों की मंडली में मि० पी० के० का प्रमुख स्थान था।

आधुनिक वीर के छोटे-छोटे कारनामों में मि० पी० के० राणा सिद्ध हस्त हैं। उन्होंने प्रायः बेटिकट ही सफर किया और टैस्ट मैच देखे हैं। सभी मित्रों से उधार लेने में निपुण हैं और प्रथम श्रेणी में सिनेमा देखते है। गरीब बाप को अमीर इरादों से परेशान करते हैं। कई पनवाड़ियों और होटल वालों का इतना उधार है कि उधर से निकलते ही नहीं। आपके पास हर सीजन की हर प्रकार की फर्स्टक्लासड्रेस है जिन्हें उन्होंने अनेक मित्रों, अमित्रों और से माग कर और शहर छोड़कर एकत्र

किया है। सम्प्रति राणा साहब लाउन्ड्रियों पर धोबियों से वार्तालाप करते चाहे जिस समय देखे जा सकते हैं।

मि० पी० के० राणा ने अनेक आधुनिक युद्ध किये है और जीत हार का मुख देखा है। एक बार आप सिनेमा हाल मे सिगरेट पी रहे थे कि कानूनन जुर्म होने के नाते आपसे निषेध किया गया किन्तु आपने कोई चिन्ता न की और पूर्ववत हँसते रहे। इस प्रकार आपने सभी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। तभी आया मैनेजर। शरीफाना झगड़ा आरम्भ हुआ। मि० पी० के० राणा बराबर जोर दे रहे थे कि वे सिगरेट नहीं पी रहे थे। मैनेजर ने उनकी काया पर रहम खाकर हाथ से सिगरेट छीन ली। ठीक तभी अड़ौस पड़ौस में ठहाका पड़ा। कारण, मैनेजर के हाथ में सिगरेट न हो कर खड़िया चौक था। यह थी वह शह जिसके बल पर मि० पी० के० राणा ऐंठ रहे थे। किन्तु दूसरी बार वे हारे और बुरी तरह हारे। बात यों हुई कि एक बार मि० पी० के० राणा सिने-भवन में छैलावताव बने डटे थे। सिर पर ईरानी टोपी, गले में चौखाने का रेशमी मफलर, दाँये हाथ में सिगरेट, बाँये हाथ में घड़ी, और पेन्ट की जेब से, शरीर से स्वास्थ्य की तरह, जरा सा रूमाल झांक रहा था। सामने की कुर्सी पर दोनों चरण-कमलों को चढ़ाये, धुँये के बादल छोड़ रहे थे। इन्टरवल में आप खड़े हुये, चारों ओर अपनी खूबसूरत निगाह डाली, रूमाल से ओठों को पोंछा, और मुस्कराते हुये झटके के साथ उठकर इस प्रकार बैठना चाहा कि कुर्सी पर नितम्ब और सामने की सीट पर पाद-युग्म एक साथ पड़ें। पर इस बीच ऐसा हो चुका था कि उनकी कुर्सी का बीच का भाग पीठ से जा लगा था अतः बैठने का स्थान दिसम्बर में नई डायरी सा रिक्त था। परिणाम ये निकला कि बेखबर मि० पी० के० राणा बुरी तरह गिरे। सिगरेट कहीं थी, रेशमी रूमाल का पता न था, घड़ी का शीशा फूट सा खिल गया था, ईरानी टोपी किसी के पैरों में पडी थी कमर में शायद मोच आगई

कराहते हुये आपके श्रीमुख से ठेठ ब्रज भाषा में निकला, "अरे, जि का हैगो।"

तभी पीछे की सीट पर बैठे हमसे न रहा गया, उन्हे बता ही तो दिया, "आप अभी नहीं समझे, आप गिर गये हैं।"

और तब वह ठहाका लगा कि आप अधूरा खेल छोड़कर बाहर निकल आये। बिना, 'बे आबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले' गाये।

वीरों के साथ खुराक का प्रश्न अँग्रेजी टैक्स्ट-बुक के साथ कुंजी की भाँति नत्थी होता है। मि० पी० के० की खुराक आधुनिक वीरों के विधानानुसार बहुत मामूली है। मूली गाजर खाना आप बरगद की जड़ चबाना समझते हैं। हाँ, बरफ पर रखे नमकीन कटे टमाटर खा सकते हैं। चाट पर भूखे शेर की भाँति टूटते हैं और केवल दौने छोड़ते हैं। दूध आप चाय में पड़ा हुआ लेते हैं और आलू की टिकिया में लगे घी का सेवन करते हैं। भ्रमण का आपको बेहद शौक है। भ्रमण का समय सुबह या शाम ८ बजे से ११ बजे तक पार्कों या काफी हाउस में होता है। कसरत के नाम पर आप घर के चबूतरे पर टहलते हैं। हाथों की कसरत आप स्नान करते समय रेक्सौना रगड़ने में करते हैं। जब झीने में चढ़ते उतरते समय आप का दम फूल जाये तब उसे आप पैरों की कसरत का नाम देते हैं। शेव प्रतिदिन और हजामत तीसरे सप्ताह बनती है। दाँत विनाका के कारण दूध के से चमकते हैं। हजामत के समय नाई से सिर की मालिश नहीं कराते। एक बार नाई ने झटके से गर्दन घुमादी थी तो तीन महीने तक गर्दन उसी दिशा में कुतुबनुमा की सुई की तरह रही आई थी। वजन का अनुमान, आप जब भी सिनेमा जाते हैं, आटोमेटिक मशीन में दस का सिक्का डालकर लगाते हैं। और फिर टिकट को दूसरों को थमा देते हैं। एक बार हमें भी टिकट थमा दिया। पेन्ट की जेबों मे दोनों हाथ डाल, उन्हें मिलाकर हिलाते हुये बोले पढो।'

"बस तीस सेर वजन, २७ साल के कड़ियल जवान का ।"

"अरे ३० सेर को मारो गोली। ऊपर क्या लिखा है, पलट कर पढ़ो।"

"ओह ! आपकी बुद्धि की सभी कद्र करते हैं क्योंकि दूसरों की उलझनों को आप शीघ्रता से सुलझा देते हैं ।"

"क्या समझे ।"

"समझ गया, कितनी टिकटें हैं आपके पास ।"

"सैकड़ों"

"तब तो आप निश्चय ही सर्व-गुण-सम्पन्न न होकर खर्व-गुण-सम्पन्न हैं, भाई कमाल है" हमारे मुँह से बेतहाशा निकला।

× × × ×

एक बार मि० पी० के० राणा जनवरी में, नुमाइश में रात के नौ बजे, केवल रेशमी बुशशर्ट ओढ़े ठंड में सिकुड़ते मिल गये ।

"क्या ठंड लग रही है ?"

"अजी नहीं। ठंड का मुझसे क्या नाता ? एक प्याला चाय पिलवाओगे, थोड़ी गर्मी आ जाती ।"

"आओ, मगर इस समय तुम यहाँ कैसे ?"

"भाई अब तो शादी करूँगा और अपने को सुपुत्र सिद्ध करूँगा ।"

"क्या पिताजी को जनाब का नेक इरादा मालुम है ?"

"पिता जी को क्या मालुम। और तुम्हें क्या मालुम कि मैं कहाँ का हूँ और कौन मेरे पिता हैं ?"

"क्षमा करना मि० राणा, यह तो आपके तथाकथित पिताजी भी नहीं बता सकते ।"

"ठीक कहते हो यार ! किन्तु मेरी बहादुरी देखना। सारे पैंतरे प्रयोग कर डालूँगा। वह आई मेरी थीम।" सहसा आधा प्याला छोड़ वे किसी सुन्दर लड़की की सीध में हो लिये

और सच ही छः माह बाद मि० पी० के० राणा का वैवाहिक-निमंत्रण-पत्र आया। जिससे पता लगा कि उन्हें एक लखपती कन्यादान करने जा रहा था और मि० पी० के० राणा सिविल इंजिनियर बन चुके थे।

मैंने न जाने का संकल्प कर लिया। राणा के नाटकों का भरोसा जो न था।

× × × ×

मि० पी० के० राणा और हम गली पर मुड़ने ही वाले थे कि एक प्रौढ़ सज्जन ने मि० पी० के० की भुज-लता को, दाँत से सेंगरी, के समान दबोच लिया और लगे एक ओर खींचने।

"आप तो प्यौर काँग्रेसी हैं, गाँधी जी के भक्त और मेरे ससुर, सभ्यता से वर्ताव कीजिये। सिविल इंजिनियर नहीं हूँ तो गुण्डा भी नहीं हूँ। बी० ए० आनर्स हूँ" मि० पी० के० ने नम्रता से कहा।

मेरी समझ में कुछ भी न आया। प्रौढ़ सज्जन का परिचय पाकर मैं हाथापाई भी नहीं कर सकता था।

प्रौढ़ सज्जन मि० पी० के० को और मि० पी० के० मुझे घसीटते ही ले गये।

एक विशाल दुकान में उन प्रौढ़ सज्जन ने प्रथम बार मुँह खोला, "इतना झूठ बोले, इतना बड़ा धोखा दिया। न बाप बाप निकला, न आप आप निकले।"

"जी बात यह है" मि० पी० के० ने कहना आरंभ किया, "मैं वकील बनूं या नेता, अभ्यास करके देख रहा था।"

प्रौढ़ सज्जन को इतना क्रोध आरहा था कि उनके मुख से शब्द नहीं निकल रहे थे। मि० पी० के० ने कहना जारी रखा, "आप विश्वास कीजिये, अब मैं बिलकुल बदल गया हूँ। जो कुछ किया था सब प्रेम की खातिर। आप इंजिनियर दामाद चाहते थे मैं सिविल इंजिनियर बन गया जो युवक इंजिनियर

न होंगे वे क्या कुँवारे मर जायेंगे ? उन्हें भी तो अच्छी लड़कियों से शादी करने का अधिकार है। मैं जीवन भर आपकी लड़की को दुख नहीं दूँगा। हमारी गृहस्थी के लिये सभी आवश्यक वस्तुएँ सोफासेट, घड़ी, साइकिल, पंखा, मेज, कुर्सी, अंगीठी, प्रेस, टेबुल लैम्प, सेफ, बर्तन, पलंग, ऊनी-रेशमी कपड़े……"

"लेकिन ये सब तो मैंने दिये हैं।"

"जी हाँ, और बड़ी खुशी से दिये हैं। आपका दिया २५,००० रुपया मेरे पास है। घर बैठे २५० ब्याज के कमा रहा हूँ। लकड़ी और गेहूँ साग के लिये इतना दो प्राणियों को पर्याप्त है। आगे भी अनेक अवसरों पर आप बहुत कुछ देंगे। अब आप मेरे लिये योग्यतानुसार कोई नौकरी तलाश दीजिये, मैं भी कोशिश में हूँ।" बड़े विश्वास और धैर्य के साथ मि० पी० के० राणा समझा रहे थे, "आप गंभीरता से विचारिये। सुख के सभी साधन मैंने अपनी बुद्धि से उपलब्ध कर लिये हैं। आज रात को मैं घर आऊँगा, आपकी लड़की चैन से है।"

मि० पी० के० राणा अपने स्वसुर को क्रोध-सागर में डूबता उतराता छोड़ मुझे घसीटते सड़क पर ले आये।

"वास्तव में आप बीसवीं सदी के अप्रतिम वीर निकले" मुझसे नहीं रहा गया।

"था" मि० राणा ने कहा, "मगर अब मैं वह वीर न रहकर प्रतिष्ठित एवं गंभीर नागरिक बनना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ जनानी सेंडिल कहीं भी हो, उसका मेरी खोपड़ी से दूर का भी संबंध नहीं होना चाहिये।"

"और श्रीमती जी के सेंडिल के बारे में क्या ख्याल है" मैं हँसा।

"वे मेरे सिर माथे पहले ही फिट हो चुकी हैं" मि० पी० के० राणा मुस्कराया, "आओ चलें, तुम्हें स्टेशन पहुँचा दूँ मैं तो अभी यहीं रुकूँगा।"

०



भाइयो और बहिनो !

दिन एक : उद्घाटन भाषण दो

भाइयो और बहिनो !

आज मैं अपने आपको, आप लोगों के बीच पाकर बहुत खुश हूँ। प्रसूतिका-गृह का उद्घाटन कर तो मैं और भी अधिक खुश हूँ। यों हम अपने माँ बाप के ११ भाई बहिन थे अतः जो चाहते सबसे तथा जबर्दस्ती करा लेते थे। मौहल्ले वाले या पड़ोसी हमसे आँख नहीं मिला सकते थे फिर भी मैं भुला नहीं पाता कि मुझसे बडे एक भाई और दो बहिन

जन्म लेते ही इस संसार से चल बसे थे अतः बचपन से ही लालसा थी कि किसी प्रसूतिका-गृह का उद्घाटन करूँ और लोगों को उसका महत्व समझाऊँ। दरअसल बात यह है कि बहुत से ऐसे काम होते हैं कि जिन्हें पूर्वज करते हैं और लाभ उनकी संतान उठाती है। माली बुढ़ापे में भी इस आशा से पेड़ लगाता है कि वह न सही उसके बच्चे फल खायेंगे। प्रसूतिका-गृह भी हमारे द्वारा रोपा ऐसा ही पेड़ है। हमें और आपको संतोष होना चाहिये कि प्रसूतिका-गृह में उत्पन्न होने की हमारी इच्छा परिपूर्ण न हुई तो हमारे बच्चों की होगी।

आप सब जानते हैं कि कलके दोस्त किन्तु आजके दुश्मन चीन से हमारा युद्ध चल रहा है और ये युद्ध लम्बा चलेगा। ये बात भी छिपी नहीं है कि चीन की आबादी हमारी आबादी से ड्योढ़ी है। ऐसी दशा में प्रसूतिका-गृह का महत्व और भी बढ़ जाता है। जितने अधिक प्रसूतिका-गृह होंगे उतने ही अधिक बच्चे होंगे। जितने अधिक बच्चे होंगे उतने ही अधिक युवक होंगे और तब हम चीन से दीर्घकाल तक करारी टक्कर ले सकेंगे। मेरी दिली तमन्ना है कि हर घर में नहीं तो हर मुहल्ले में एक प्रसूतिका-गृह हो। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि प्रसूतिका-गृह की संख्या पर बच्चों की संख्या निर्भर है और इस समय हमें बच्चों की बहुत आवश्यकता है। कितने मूर्ख हैं वे लोग जो परिवार-नियोजन की बात करते हैं। परिवार-नियोजन से तो प्रसूतिका-गृह ही बन्द होजायेंगे।

लोग कहते हैं कि हमारा देश पिछड़ा हुआ है। असल बात यह है कि जब से विदेशी भारत आये हम अपने आप को, अपनी प्रगति को भूल गये। स्मरण रखना चाहिये कि कभी भारत विश्व का गुरु था। जब सारा संसार अज्ञान के अंधकार में भटक रहा था तब हमारे देश में वेद की रचना हो रही थी। प्राचीन भारत में क्या नहीं था। प्रसूतिका-गृह के मामले में भी हम पिछडे नही थे आप सभी जानते हैं कि राजा सगर की एक

रानी से साठ हजार पुत्र हुये थे। मैं समझता हूँ भारत का यह विश्व रिकार्ड है और अभी तक कायम है। भला किसी घर में इतने अधिक बच्चे पैदा होने का प्रबन्ध हो सकता है ? अतः किसी न किसी रूप में प्रसूतिका-गृह का समुचित प्रबन्ध अवश्य था। आज हम चतुर्मुखी प्रगति कर रहे हैं। हमें विश्वास है कि हम प्राचीन आदर्श को पुनः प्राप्त करेंगे।

मुझे विश्वास है कि यहाँ जो भी मरीजा आयेगी, छोटी या बड़ी, गरीब या अमीर सब को एक सा विनम्र व्यवहार मिलेगा। हमें याद रखना चाहिये कि भावना से कर्तव्य बड़ा होता है। ऐसी दशा में, समाज में हर प्रकार के प्राणी रहते हैं। किसी परिस्थिति से विवश होकर हमें अवाँछित कार्य भी करने पड़ते हैं अतः यहाँ कभी यदि कुँवारी या विधवा महिला भी आये तो भी उसका स्वागत ही होना चाहिये। हमें भूलना न चाहिये कि कुँवारी कुन्ती से ही दानवीर योद्धा कर्ण पैदा हुआ था। जहाँ सधवा स्त्रियाँ हमारी बहुयें हैं वहाँ विधवा या कुँवारी लड़कियाँ भी आप लोगों की माँ बहिनें है।

समय कम है अतः अधिक नहीं कहूंगा। अन्त में मैं आप सबका आभारी हूं कि प्रसूतिका-गृह में मुझे बुलाकर मेरी बचपन की इच्छा-पूर्ति की। मैं आप सब श्रोताओं से प्रार्थना करूँगा कि आप अभी से इस प्रसूतिका-गृह को तन-मन-धन से सहयोग प्रदान करेंगे और लोगों को इसका अर्थ समझायेंगे। जलपान-गृह की तरह यहाँ प्रसूतिका नहीं बिकती।

सब से अन्त में इस प्रसूतिका-गृह के कर्मचारियों के भाग्य से मुझे ईर्ष्या होती है कि वे पैदा होते ही महापुरुषों के दर्शन ही नहीं करेंगे बल्कि उनके जनक भी कहलायेंगे। क्योंकि सब जानते हैं कि कोई नहीं जानता कि कौन बच्चा गाँधी बनेगा और कौन जवाहर। मैं एक बार पुन: यहाँ के डाक्टरों और नर्सों को उनके कर्तव्य और उत्तरदायित्व की याद दिलाता हू और ये कामना

कट करता हूँ कि वे आपस में मिलकर कुछ ऐसी मुस्तैदी से काम करेंगे कि एक बार मरीजा न भी आये तो भी प्रसूतिका-गृह का काम बन्द न हो।

जय हिन्द !

(दो)

भाइयो और बहिनो !

आज मैं अपने आपको, आप लोगों के बीच पाकर बहुत खुश हूँ। परिवार-नियोजन-केन्द्र का उद्घाटन कर तो मेरी खुशी और भी बढ़जाती है। मुझे यह बताने में शर्म नहीं है कि मैं अपने माँ बाप की ग्यारहवीं सन्तान हूँ। बड़ी मुश्किल से गुजारा हुआ। खाने, पहनने, पढ़ने आदि सभी आवश्यकताओं में इस संख्या ने गड़बड़ी पैदा की। अतः बचपन से ही मेरी तमन्ना थी कि किसी परिवार-नियोजन-केन्द्र का उद्घाटन करूँ और उसका सामयिक महत्व लोगों को समझाऊँ। असल में बात यह है कि कुछ काम ऐसे होते हैं कि जिन्हें जो सम्पन्न करते हैं, वे उसका लाभ नहीं उठा पाते। परिवार-नियोजन-केन्द्र भी एक ऐसा ही काम है जिसका लाभ हम न उठाकर हमारे बच्चे उठायेंगे। आखिर माली उन सभी पेड़ों के फल नहीं खाता जिन्हें वह अपने जीवन काल में लगाता है। इस केन्द्र का लाभ भी हम न उठाकर हमारे बच्चे उठायेंगे। आखिर बच्चों की खुशी ही हमारी खुशी है।

आप जानते हैं कि कल तक जो चीन हमारा मित्र था, आज हमारा दुश्मन है। और उससे युद्ध चल रहा है। चीन की आबादी हमारी आबादी से ड्योढ़ी है। ऐसी दशा में परिवार नियोजन-केन्द्र का महत्व और भी बढ़ जाता है। हमें कमजोर और अधिक बच्चे नहीं चाहिये। हमें चाहिये स्वस्थ, शिक्षित और मजबूत इरादो वाले नौजवान आज के युद्ध में जन-संख्या क

निर्णायक महत्व नहीं है। महत्व है स्वास्थ्य और संयम का, अनुशासन का। जरा से जापान ने द्वितीय विश्वयुद्ध में तहलका मचा दिया था और आज चीन न हाँगकाँग ले सकता है, न ताइवान। अतः हमें कमजोर और अधिक बच्चे नहीं चाहिये। हमें चाहिये स्वस्थ, शिक्षित और मजबूत इरादों वाले नौजवान, और यह तभी संभव है जब बच्चे कम पैदा हों। और बच्चे परिवार-नियोजन-केन्द्र द्वारा ही कम हो सकते हैं। अक्ल के दुश्मन हैं वे लोग जो अधिक बच्चे पैदा करने में देश का हित देखते हैं।

हमारे ही देश में ऐसे महानुभावों की कमी नहीं है जो हमे सारी दुनिया से पिछड़ा मानते हैं। छोटे छोटे देशों को भी आगे बताने में उन्हें शर्म नहीं आती। वे अपने देश के प्राचीन गौरव, संस्कृति और सभ्यता को भूल जाते हैं। वे यह नहीं जानते कि किसी समय भारत सबका गुरु था। जब सारा संसार अज्ञान के अंधकार में भटक रहा था तब हम वेद की रचना कर रहे थे। क्या नहीं था प्राचीन भारत में ? परिवार नियोजन को ही लें, सब जानते हैं कि राजा सगर की एक रानी से ६०,००० पुत्र थे दूसरी रानी से मात्र एक। क्या अर्थ है इसका ? यही कि समझदार राजा ने परिवार-नियोजन के साधन अपनाये। परिवार-नियोजन का यह एक अनुपम उदाहरण है। मेरा विश्वास है कि कोशिश करने पर हम अपने प्राचीन आदर्शों को अवश्य प्राप्त कर सकते हैं।

मैं आशा करता हूँ कि यहाँ जो भी आयेगा, छोटा या बड़ा, अमीर या गरीब, सभी से समान प्रेम व्यवहार किया जावेगा। हमें यह भूलना नहीं चाहिये कि भावना से कर्तव्य बड़ा होता है। अतः यहाँ जो भी आये वही लाभ उठाने का अधिकारी है। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि परिवार-नियोजन की शिक्षा विद्यालयों में अनिवार्य कर दी जानी चाहिये

मैं आपका अधिक समय नहीं लूंगा। आप सौभाग्यशाली हैं कि आपके नगर में परिवार नियोजन केन्द्र खुला है। आप सब नर, नारी, बाल, युवा, वृद्ध से प्रार्थना है कि इस केन्द्र का पूरा-पूरा लाभ उठावें और तन-मन-धन से इस परिवार-नियोजन-केन्द्र को सहयोग दें। मुझे विश्वास है कि बच्चे उत्पन्न होने के भय से किसी कारण-वश जो हत्या या आत्महत्यायें होती हैं, वे न होंगी और समाज अपने को अधिक सुरक्षित अनुभव करेगा। अन्त में मैं आपका कृतज्ञ हूँ और धन्यवाद देता हूँ कि मुझे यहाँ बुलाकर मेरे बचपन की इच्छा पूर्ति की।

इस केन्द्र के कर्मचारियों से भी दो शब्द कहने हैं। उन्हें लज्जा और झूठे आडम्बर का परित्याग कर नियोजन साधनों का प्रचार करना चाहिये और लोगों को उसका लाभ समझाना चाहिये। मुझे पता लगा है कि कुछ कर्मचारी अविवाहित हैं। अधिक न कहकर इतना कहूँगा कि प्रत्येक कर्मचारी का अनुभवी होना आवश्यक है। उन्हें मैं उनके कर्तव्य और उत्तरदायित्व को एक बार पुनः याद दिलाना चाहूँगा। वे आपस में मिलकर ऐसी मुस्तैदी से काम करें कि एक बार नागरिकों का सहयोग न मिलने पर भी नियोजन-केन्द्र बन्द न होने दें और देश की प्रगति में अपना भाग अदा करें।

जयहिन्द !

—o—



विद्वान्सः मूर्खाः भवन्ति

जिस प्रकार स्वतन्त्र-भारत का यह अर्थ नहीं है कि भारत ने अँग्रेजों के साथ-साथ अँग्रेजी की दासता से भी मुक्ति पाली है, उसी प्रकार विद्वान का अर्थ भी अज्ञान के साथ-साथ मूर्खता से छुटकारा पाना कदापि नहीं है। कभी-कभी, दिग्गज पी० एच० डियों और डी० लिटों के साथ सटकर खड़ा होने पर गर्दभराज की शोभा दुगुनी हो जाती है। ये विद्वान मूर्ख यों विचार-गोष्ठियों से लेकर संसद भवन तक पाये जाते हैं किन्तु नेता निकुंजों को छोड़कर इनकी घनी आबादी शिक्षा-संस्थाओं

था सरकारी मंत्रालयों में होती है। सूरज की भाँति ज्यों-ज्यों पद ऊँचा होता जाता है, मूर्खता की गर्मी से त्यों-त्यों जनता का पसीना निकलता जाता है। आइये, इस पुरातत्व-संग्रहालय (भविष्य में विद्वान मूर्ख-मण्डली का यही नाम पड़ेगा) के कुछ नमूने देखें।

इंगलैण्ड से एक पानी का जहाज बम्बई आ रहा था। मार्ग में एक करोड़पति रईस की लड़की सागर में गिर पड़ी। रईस ने बहुत शोर मचाया किन्तु गरजते समुद्र में कूदने का साहस किसी को न हुआ। सहसा एक वृद्ध, जो राजनीति-शास्त्र का प्रकाण्ड विद्वान तथा विख्यात कूटनीतिज्ञ था, कूद पड़ा, और उस लड़की को पकड़े-पकड़े डूबने लगा। कप्तान ने जाल डाला और बेहोश अवस्था में दोनों को निकाला। होश आने पर रईस ने सभी यात्रियों को एकत्र किया और घोषणा की, "आपने देखा कि जब मेरी इकलौती बच्ची गहरे सागर में गोते खा रही थी, और मैं बर्बाद होने जा रहा था, इन वृद्ध महोदय ने हिम्मत की और मेरी बच्ची को बचा लिया। मैं अपनी आधी सम्पति जो लगभग तीन करोड़ की होती है, इन्हें पुरस्कार स्वरूप देता हूँ। अब ये महाशय आपको बतायेंगे कि इन्होंने मेरी बच्ची को कैसे बचाया ?"

तालियों की गड़गड़ाहट के बीच उस वृद्ध विद्वान ने रुआंसे स्वर में कहना आरंभ किया, "यह तो मैं बाद में बताऊँगा कि मैंने इस लड़की को कैसे बचाया, पहले मैं यह पूछना चाहता हूँ कि मुझे धक्का किस उल्लू के पट्ठे ने दिया था ?"

× × × ×

कृषि-विशेषज्ञ, अनेक विदेशी पदवियों से आभूषित डा० क्षेत्रपाल जब गाँव में 'अधिक अन्न उगाओ' भाषण माला में अणुशक्ति चालित औजारों का प्रयोग और लाभ समझा रहे थे तो किसी ग्रामीण ने दो हरी बालें रखदीं, 'खाद बीज पानी का

बढ़िया प्रबन्ध करते नहीं, सूखा भाषण दिये चले जा रहे हैं। बताओ इनमें से कौन सी बाल जौ की है और कौन सी गेहूँ की।"

विशेषज्ञ महाशय चौंके, जैसे बीच जंगल में डाकुओं ने जंजीर खींच दी हो। संभल कर चुनौती स्वीकार की, "मामूली बात है, मेरा सेक्रेटरी ही बता देगा।"

सेक्रेटरी झिझका किन्तु विशेषज्ञ ने धक्का देकर आगे कर दिया। सेक्रेटरी ने राम का नाम ले एक बाल सीधे हाथ में उठादी, "यह बाल गेहूँ की है" और बाँये हाथ से दूसरी बाल हिलायी, "यह जौ की।"

किसान मण्डली धूप सी खिली तो खाँसते मठारते विशेषज्ञ उठे। उनकी चाल काम कर गई थी। उन्होंने सेक्रेटरी को नालायक कहा और असीम विश्वास से बाँया हाथ हिलाया, "ये बाल गेहूँ की" और सीधे हाथ को ऊँचा उठाकर "यह जौ की है" कह ज्ञान-गर्व से किसानों की ओर देखा।

किसान मण्डली फूट सी फिर फट पड़ी, "हमने कहा न कि पानी खाद और बीज का प्रबन्ध कीजिये, दोनों बालें जौ की हैं।"

× × × ×

कभी कभी विद्वानों का सम्पूर्ण समूह ही मूर्ख तत्व से बना हुआ होता है। एक बार अंग्रेजी भाषा के चोटी के विद्वान गोल मेज के चारों ओर आसीन हुये और एकमत से यह राय निश्चित की कि अंग्रेजी शब्दों के समानार्थी हिन्दी में नहीं हैं जब कि हिन्दी का कोई भी साहित्यिक या लौकिक भाव अंग्रेजी में उसी खूबसूरती के साथ अनुवादित हो जाता है।

ठीक उसी समय दरवाजे पर जामुन वाले ने अत्यन्त मधुर स्वर में आवाज लगायी, "नमक में हिला दिये काले बताशे"

तब एक चुपचाप बैठे व्यक्ति ने कहा "यह वाक्य आप लोगों के सामने है आप सब विद्वान मिलकर इस वाक्य का

अनुवाद इस समय कर दें या साल छः महीने बाद। इच्छा हो तो लन्दन को फोन करलें। वाक्य मैं फिर दुहराता हूँ, 'नमक में हिला दिये काले बताशे।"

और उस समय अँग्रेजी भाषा की स्मृति में दो मिनट का मौन छागया।

× × × ×

वाइसचाँसलर निर्णय दे रहे थे, "क्योंकि सर्वाधिक मत पाने वाले व्यक्ति का खड़ा होना ही अवैध था अतः उनकी जीत रद्द की जाती है और उनसे क्रमशः कम मत पाने वाले तीन व्यक्ति चुने जाते हैं।"

"ठीक है" वरिष्ठ प्रोफेसरों ने पुष्टि की।

"लेकिन" एक छोटे अध्यापक ने कहा, "चुनाव पुनः होने चाहिये। क्योंकि यदि प्रथम व्यक्ति खड़ा ही नहीं होता तो उसे मिलने वाले मत किसी भी अन्य प्रत्याशी को, जिसे आप समिति में नहीं ले रहे, विजयी बना सकते हैं।"

उपकुलपति तथा अन्य विद्वानों ने चौंककर स्वीकार कर लिया।

× × × ×

"आपके ज्येष्ठ पुत्र की आयु ?" प्रसिद्ध दार्शनिक से इण्टरव्यू-कर्त्ता ने प्रश्न किया।

"ठहरो" और दार्शनिक ने अपनी श्रीमती को बुलाया, "हमारी शादी को कितने वर्ष हो गये ?"

"पच्चीस वर्ष"

"बस शादी के एकाध वर्ष इधर या उधर ही हमारे सोमेश का जन्म हुआ था" बिना सिर उठाये उन्होंने उत्तर दिया।

× × × ×

क्लर्क ने एजेन्डा घुमाया। सभी विद्वान सदस्यों ने समय स्थान पूछ कर हस्ताक्षर कर दिये। एजेन्डा की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार थीं—

"…ता० को…स्थान पर…के सभापतित्व में सभी गधों की एक आवश्यक मीटिंग होगी। आपकी उपस्थिति प्रार्थनीय है।…"

× × × ×

शौकीन प्रोफेसर ने सलाह दी, "आप पैन्ट सिलवाना चाहते हैं। तो गुप्ता एन्ड को० से सिलवाइये, फर्स्ट क्लास शेरवानी सीता है।"

× × × ×

सम्पादकीय टिप्पणी में एक वाक्य का आरम्भ यों था—

"…देवी बाल ब्रह्मचारिणी हैं, हम सब की माँ हैं…"

× × × ×

लेखक—क्या आपने मेरा नया सामाजिक उपन्यास पढ़ा है ?"

आलोचक—क्यों नहीं। आपने सामाजिक समस्यायें अच्छी उभारी हैं। नायक का चरित्र आरंभ में दुर्बल है किन्तु अन्त में प्राणवान हो उठा है। नायिका का चरित्र अस्वाभाविक होगया है। कुछ घटनायें मुख्य कथा से सम्बन्ध नहीं रखतीं। यों उपन्यास रोचक है, भाषा कही कहीं दुरूह हो गई है। गेटअप छपाई सफाई अच्छी है। कहीं कहीं प्रूफ की गल्तियाँ रह गई हैं जो अगले संस्करण में दूर हो जानी चाहिये। मूल्य कुछ अधिक लगता है। मिलने का पता… ।"

लेखक—लेकिन अभी प्रकाशित ही कहाँ हुआ है ?

× × × ×

"उर्वशी अत्यधिक सुन्दर पुस्तक है। मेरे अनुमान से इधर अनेक वर्षों में ऐसी उच्चकोटि की काव्य-पुस्तक नहीं निकली है

"आप अनुमान की बात करते हैं, मेरा ध्रुव मत है कि वह कवि को कालिदास और प्रसाद की परम्परा मे बैठाती है। किन्तु खेद है कि मैंने उर्वशी अभी तक नहीं पढ़ी। आपने ?"

"मैंने भी नहीं पढ़ी।"

× × × ×

विदुषी महिलायें भी कम मूर्ख नहीं होतीं। एक बार बस में हाफ टिकट बचाने के लिये कन्डक्टर को अपने बच्चों की उम्र यों बताई, "१½ वर्ष, २ वर्ष, २½ वर्ष………"

× × × ×

कन्डक्टर ने विदुषी महिला से कहा, "आपके लड़के का टिकट पूरा लगेगा, १४ वर्ष से कम उम्र नहीं है।"

"मगर मेरी शादी को तो दस वर्ष भी नहीं हुये।"

"मुझे आपके व्यक्तिगत जीवन से क्या वास्ता ?" कन्डक्टर ने कंधे उचका दिये।

× × × ×

एकदम आधुनिक महिलायें क्लब में चर्चा कर रही थीं। बात राजनीति, सिनेमा और कालेज लाइफ से हटकर इस विषय पर आगई कि उपस्थित महिलाओं में से सर्वाधिक सौभाग्यशालिनी कौन है ? संपत्ति और बैंक बेलैंस को गोली मारकर, सर्व सम्मति से माप दण्ड यह निश्चय हुआ कि जिसके पति की बीमा पालिसी सबसे अधिक हो वही सर्वाधिक सौभाग्यशालिनी होगी। तब मिसेज चड्ढा चहकीं, "मेरे हस्बैन्ड का बीमा १५००० का है ?"

"मेरे हस्बैन्ड का इन्स्योरेन्स २५००० का है" मिसेज तिलैया निकल पड़ीं।

"और मेरे लाइफ पार्टनर का ५०,००० का" मिसेज गुब्बू ने झंडा गाड़ा। मैं सबसे अधिक फार्चुनेट वाइफ हूँ "

अन्त में मिसैज चटाई चीख पड़ीं, "माईसैल्फ मोस्ट फार्चुनेट वाइफ हूँ बिकाज माई हस्बैन्ड इज पाइलट आफिसर, ऐनी मोमेन्ट डैथ हो सकता है ?"

शेष सभी महिलायें अपने-अपने दुर्भाग्य को कोसकर उदासीन होगईं।

× × × ×

एक विदुषी महिला ने भूगोल के किसी विषय पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया। नक्शे निःसन्देह अत्यधिक सुन्दर थे तथा समान आकार के थे। नक्शों की प्रशंसा वह फेंफड़े फुलाकर कर रही थी, "कोई भी ऐसे नक्शों का निर्माण तो करे। मेरे बनाये हुये मौलिक नक्शे हैं।"

उसकी गर्व-घोषणा उचित थी, अतः सभी चुप थे। थीसिस पलटते समय एक नक्शे के स्केल पर निगाह गई तो शंका हुई। स्केल को उस महिला को दिखाया तो पहले उसे पसीने आये फिर बेहोश हो गई।

वास्तविक बात यह थी कि स्वयं तो उन्होंने कुछ किया नहीं था, बड़े-बड़े नक्शों का फोटो खिचवाकर एनलार्ज करवाया था और तब उनकी ज्यों की त्यों नकल करवादी थी। परिणामतः उन छोटे नक्शों में भी स्केल का अनुपात (आर-ऐफ) वही था, जो बड़े-बड़े नक्शों में था।

× × × ×

अन्तिम उदाहरण।

रेल के डिब्बे में नीलामी हो रही थी। यूनिवर्सिटी के डीन फैकल्टी आफ आर्ट्स, जो विवशता में फर्स्टक्लास की टिकट लेकर थर्डक्लास में आ बैठे थे, सपरिवार दिलचस्पी ले रहे थे। नीलामी बाटा के जूतों की हो रही थी। प्रोफेसर साहब के सामने ही बैठे गंवार ने कहा "साहब नीलामी में हमेशा धोखा रहता

है, अक्सर खराब चीज भेड़ दी जाती है। हम जैसे गंवार चंगुल में फँस जाते हैं, आप जैसे पढ़े लिखे शहरी लोगों को झांसे में नहीं आना चाहिये।"

प्रोफेसर ने उस जूते को देखा, परखा। एकदम नया था। पहन कर भी देखा, फिट था। बाजार में दाम ५) थे। १६ वर्ष के ब्वाइ, १७ वर्ष की बेबी तथा अपटुडेट मम्मी ने भी निरखा-परखा।

"दूसरा जूता दिखाना।"

नीलामी वाले ने वह जूता लेकर अन्य यात्रियों को दे दिया तथा अन्य यात्रियों से दूसरा जूता लेकर प्रोफेसर साहब को दे दिया। पहन कर देखा, ठीक था। अब डैडी, मम्मी, सन, बेबी सभी की नीलामी लगाने पर सहमति हो गई। टैनिस खेलने में काम आयेगा।

गंवार ने फिर टोका किन्तु प्रोफेसर ने बोली लगानी आरम्भ करदी। १॥=) में जूता प्रोफेसर के सिर रहा। एक बार फिर एक-एक जूते को प्रत्येक सदस्य ने देखा और खुशी-खुशी डिब्बे में बन्द कर लिये।

उतरते समय गँवार ने फिर कहा, "हो सकता है कि इन जूतों में कोई खराबी न हो, किन्तु ५) का जूता १॥-) में क्यों बेचा जायेगा, यह बात समझ में नहीं आती।"

अगले स्टेशन पर प्रोफेसर साहब उतरे तो उनकी चप्पलें गायब थीं।

"कोई बात नहीं" सारा शिक्षित परिवार लगभग एक साथ बोल उठा, "बक्स आदि खोलने की आवश्यकता नहीं है। नीलामी वाले जूते ही इस समय पहिन लिये जायें

चप्पलों के खोने पर तनिक भी दुखी हुये बिना जूते निकाले और मुस्कराकर एक के बाद दूसरा जूता पहिना तो सहसा दर्द से चीख उठे, जैसे काँटा चुभ गया हो, "अरे, मर गये।"

"क्या हुआ ?"

"दोनों जूते एक ही पैर के हैं" प्रोफेसर साहब ने आह भरी।

—o—